मज़बूत इरादे की ज़रूरत

Sept 2023

"सारा गिला और सारा शिकवा इस बात का है कि हम हिन्दुस्तानी मुसलमानों ने अभी अच्छी तरह से सोच-समझकर यह फ़ैसला नहीं किया कि हम हर चीज़ की कुर्बानी के लिए तैयार हैं, ईमान व अक़ीदे की कुर्बानी के लिए तैयार नहीं हैं। उस आधी रात को जिसमें दुआएं कुबूल होती हैं और जिसमें झूठ बोलने वाला भी झूठ बोलने से डरता और पनाह मांगता है, मैं खुदा की क़सम! खाकर कहता हूं कि जिस दिन आपने यह फ़ैसला किया कि आपको ईमान सबसे बढ़कर अज़ीज़ है, ईमान के बग़ैर बच्चों का जीना भी आपको मतलूब नहीं, उसी वक़्त से हालात में तब्दीली आ जाएगी और मुश्किलों के पहाड़ (अगर वह मुश्किलें ख़्याली नहीं बल्कि वाक़ई हैं) अपनी जगह से हट जाएंगे।"

(खुत्बा-ए-सदारत दीनी तालीमी कौन्सिल 1942ईसवीः पेज-8)

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह0)

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

मर्कज़ुल इमाम अबिल हसन अल नदवी
दारे अरफ़ात, तकिया कलां, रायबरेली

सब्र का मतलब

"तुमने अपनी बदबख़्ती से न सिर्फ़ शरीअत के हुक्म को बदला बल्कि अपने तरीक़ा–ए–अमल से शरीअत के लफ़्ज़ों को, बोलियों को भी बदल डाला। "सब्र" के माने क्या हैं? तुम समझते हो कि सब्र के माने हैं; बेग़ैरती और बातिल की परस्तिश और पूजा। तुम सब्र के यह माने समझते हो लेकिन जो शख़्स सब्र के यह माने समझता है उससे बढ़कर कुरआन मजीद की तहरीफ़े लफ़्ज़ी करने वाला कोई नहीं। तहरीफ़े मानवी तो बहुत से उलमा कर रहे हैं, लेकिन तहरीफ़े लफ़्ज़ी यह है कि अगर सब्र के माने यह हैं कि तुम्हारे हक़ के मुक़ाबले में मुसीबत आ जाए तो तुमको चाहिए कि सब्र के गोशे में पनाह लो यानि हर तरह की बेग़ैरती को, बेचारगी को, बातिल परस्ती को कुबूल कर लो, तो मेरे भाइयो! तुमसे बढ़कर कुरआन की तालीम को बदलने वाला कोई नहीं।

"सब्र" के माने उससे बिल्कुल अलग हैं। सब्र के माने हैं; बर्दाश्त के, सब्र के माने हैं; झेलने के, सब्र के माने हैं तहम्मुल (धैर्य) के, जो क़दम तुम मक़सद की राह में अपने महबूब और प्यारे मक़सद के लिए उठाओ और इसमें तरह–तरह की मुसीबतें आएं, तरह–तरह की डरावनी सूरतें आएं, ज़ंजीरे और हथकड़ियां आएं, बल्कि मुमकिन है कि तुम्हारे सामने तख़्ता आवे और उस पर एक फन्दा झूल रहा हो। यह सब तुम्हारे सामने आ सकता है लेकिन अगर तुम हक़ के परस्तार हो तो तुम्हारा फ़र्ज़ होना चाहिए कि तुम्हारे अन्दर सब्र हो। तुम्हारे अन्दर बर्दाश्त की वह अटल ताक़त, बर्दाश्त का वह पहाड़ मौजूद हो जिस पर दुनिया की कोई शौकत, कोई ताज व तख़्त फ़तेहयाब न हो सके। यह माने सब्र के हैं। इसीलिए अगर कुरआन मजीद के इस्तेमाल के मौक़े पर अगर ग़ौर किया जाए तो मालूम हो जाएगा कि हर जगह सब्र के यही माने हैं।"

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (रह०)

(ख़ुत्बात–ए–आज़ाद: 59–60)

بِسۡمِ ٱللَّهِ ٱلرَّحۡمَٰنِ ٱلرَّحِيمِ

मासिक

अरफ़ात किरण

रायबरेली

अंक:9 | सितम्बर 2023 ई० | वर्ष:15

सम्पादक

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

सम्पादकीय मण्डल

मुफ्ती राशिद हुसैन नदवी

अब्दुस्सुबहान नारवुदा नदवी

सह सम्पादक

मो० नफ़ीस ख़ॉ नदवी

मुद्रक

मो० हसन नदवी

अनुवादक

मोहम्मद सैफ़

ईमान क्या है?

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया:

"ईमान की तारीफ़ यह है कि तुम अल्लाह की वहदानियत (एकता) पर ईमान लाओ और उसके फ़रिश्तों के वजूद पर उसकी मुलाक़ात के बरहक़ होने पर और उसके रसूलों के बरहक़ होने पर और मरने के बाद दोबारा उठने पर।"

(सही बुख़ारी: 50)

E-Mail: markazulimam@gmail.com www.abulhasanalinadwi.org

मर्कजुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली,यू0पी0.229001

प्रति अंक 15रू

मो० हसन नदवी ने एस० ए० आफसेट प्रिन्टर्स, मस्जिद के पीछे, फाटक अब्दुल्ला ख़ॉ, सब्ज़ी मण्डी, स्टेशन रोड रायबरेली से छपवाकर आफिस अरफ़ात किरण,मर्कजुल इमाम अबिल हसन अल-नदवी, दारे अरफ़ात, तकिया कलां रायबरेली से प्रकाशित किया।

वार्षिक 100रू0

Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi Samiti (Punjab National Bank) A/c No. 6127002100000339 (IFSC: PUNB0612700)

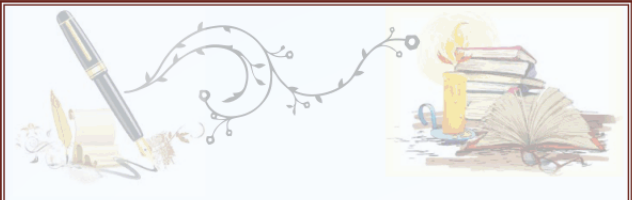

सहाबा (रज़ि०) की बुज़ुर्गी

सैय्यद अब्दुर्रब सूफ़ी (रह०)

सहाबा में रसूल-ए-पाक की सोहबत की तासीरें
"युअलिमुहुम" की तश्रीहें "युज़क्कीहिम" की तफ़सीरें
कलामुल्लाह के मिस्ल एतबार उनका मुसल्लम है
वह आदिल हैं तो नातिक़ हैं क़लामे हक़ की तहरीरें
किराम उनको कहा अल्लाह ने, बररह कहा उनको
मलाएक को भी इन अलक़ाब की शामिल हैं तफ़सीरें
नबी को भा गई ख़ुद अपनी जिस खेती की शादाबी
इसी क़ुरआं में महफ़ूज़ है सब उसकी ताबीरें
नबी नूरे ख़ुदा हैं गो नहीं उस नूर का टुकड़ा
सहाबा हैं नबी के नूर की पुरनूर तनवीरें
जमाल उनका जमाले पाके हक़ बनकर पुकार उठा
मुहम्मद की ग़ुलामी से बदल जाती हैं तक़दीरें
ख़ुद उनकी आंख टेढ़ी है जिसे टेढ़ी नज़र आएं
रसूले पाक के दस्ते मुबारक की तामीरें
सहाबा ने नबी पर इस तरह जाने फ़िदा की हैं
कि मिट सकती नहीं अब "मनक़ज़ा नहबहु" की तहरीरें
लिये फिरते थे यूं हक़ के लिए जानें हथेली पर
खिंची हैं "सफ़हए मन यनतज़िर" पर अब भी तस्वीरें
ज़मीने क़ुद्स में ख़ूने शहादत यूं समोया है
सहाबा का लहू टपके अगर ज़र्रों का दिल चीरें
वही है दीने हक़, हम और सहाबा जिस पे क़ायम हैं
यह होती थीं रसूले पाक की पुरकैफ़ तक़रीरें
फ़लाहे दो जहां है पैरवी क़ौमें सहाबा की
अबस है कीजिए उसके सिवा गो लाख तदबीरें
सहाबा पर अगर शक है तो अपने हाथ में सूफ़ी
नमाज़े हैं दुआएं हैं अज़ाने हैं न तकबीरें

इस अंक में:

मुल्क की बिगड़ती सूरतेहाल 3

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

ज़रिये व मक़सद का सही तालमेल–वक़्त की एक अहम ज़रूरत.....4

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

दीनी दावत के रहनुमा उसूल.....6

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

तक़वा क्या है?.....8

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

निकाह के चन्द मसाएल 10

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

मुश्रिकीन की मांगे और कुरआन का ऐलान.....12

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

सहाबा किराम (रज़ि०) की मुहब्बत.....14

मौलाना सैय्यद महमूद हसन हसनी नदवी (रह०)

चन्द लम्हे सलफ़–ए–सालिहीन के सोहबत में.....16

मुहम्मद अमीन हसनी नदवी

मौलाना अली मियाँ (रह०) – बहैसियत सदर आल इण्डिया मुस्लिम पर्सलन लॉ बोर्ड.....17

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

मुल्क की बिगड़ती सूरतेहाल

बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

इस मुल्क की ख़ासियत यह रही है कि यह मुख़्तलिफ़ मज़ाहिब और तहज़ीबों का मरकज़ रहा है। हर एक को फलने–फूलने के मौक़े यहां हासिल हुए हैं। आज़ादी की लड़ाई हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ मिलकर लड़ी है और वाक़्या यह है कि मुल्क में जंग–ए–आज़ादी का सूर फूंकने वाले मुसलमान ही थे। हज़रत शाह अब्दुल अज़ीज़ देहलवी (रह0) ने सबसे पहले इसका फ़तवा दिया और हज़रत सैय्यद अहमद शहीद रायबरेलवी (रह0) ने सबसे पहले अमली क़दम उठाया। रेशमी रूमाल की तहरीक हो या शामली के मैदान की जांबाज़ियां, उसकी क़यादत करने वाले उलमा व मशाएख़ थे। गांधी जी को गोशा–ए–तन्हाई से निकालकर क़यादत के मन्सब पर मौलाना मुहम्मद अली जौहर (रह0) ने बिठाया। मुल्क की आज़ादी की यह एक पूरी तारीख़ है, लेकिन बर्तानिया ने अपना साम्राज्य लपेटते–लपेटते भी अपनी ऐसी बदनुमा यादगारें छोड़ीं जिन्होंने मुल्क की शबीह दाग़दार कर दी। मुल्क की संस्कृति और रिवायात को गन्दा कर गए। एक अंग्रेज़ मुसन्निफ़ इसका एतराफ़ करते हुए कहता है कि हमने ऐसी तारीख़ तैयार कर दी है कि हिन्दु और मुसलमान कभी मिल नहीं सकते। इसका सबसे पहला मुज़ाहरा मुल्क की तक़सीम के मौक़े पर बहुत ही घिनावनी शक्ल में हुआ। औरतों और बच्चों को ज़िन्दा खौलते हुए तेल में डाल दिया गया। अफ़सोस की बात यह है कि यह सब उन लोगों ने किया जिन्होंने मिलकर मुल्क की आज़ादी के लिए कुर्बानियां दी थीं और उसके लिए लाखों नहीं करोड़ों जानें नज़र हुई थीं।

इससे ज़्यादा अफ़सोस की बात यह है कि मुल्क में ऐसी घिनावनी ज़हनियत रखने वाला तबक़ा न सिर्फ़ यह कि मौजूद है बल्कि पनप रहा है और यह चीज़ मुल्क की सालिमियत के लिए बहुत बड़ा ख़तरा बनती जा रही है कि इस तबक़े की हिम्मत अफ़ज़ाई उन लोगों की तरफ़ से हो रही है जो लोग मुल्क की सालिमियत के ज़िम्मेदार समझे जाते हैं। मुल्क को आज़ाद हुए सिर्फ़ सत्तहतर साल का अर्सा गुज़रा है लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि वह दोबारा ग़ुलामी की तरफ़ जा रहा है। मुल्क का आला दिमाग़ दूसरों के काज़ के लिए इस्तेमाल हो रहा है। सात–सात समन्दर पार से यहां की पॉलिसियां तय की जा रही हैं और उस क़ौम से इस सिलसिले में मशवरे किये जा रहे हैं जिसने इस मुल्क को तबाह करने की क़सम खा रखी थी। यहूदी प्रोटोकॉल में यह हक़ीक़तें मौजूद हैं। क्या उससे इस मुल्क के लिए किसी भलाई की उम्मीद की जा सकती है जिसने हमेशा इन्सानियत का ख़ून पिया है? यह सूरतेहाल मुल्क के लिए बेहद ख़तरनाक है!!

मुल्क के बाशिन्दों को बराबर के शहरी हुक़ूक़ हासिल हैं। यहां के क़ानून में कोई भेदभाव नहीं है लेकिन जिस तरह यहां की सबसे बड़ी अक़्लियत के साथ बर्ताव किया जा रहा है और ख़ास तौर पर इलेक्ट्रानिक मीडिया यहां के ज़हन ख़राब करता रहा है। यह यहां की पूरी फ़िज़ा को ज़हरआलूद कर देने के लिए काफ़ी है फिर मसला सिर्फ़ एक क़ौम का नहीं रह जाएगा पूरा मुल्क ख़तरे में पड़ जाएगा। किसी भी मुल्क के लिए यह बहुत ही ख़तरनाक सूरतेहाल है कि वहां की आबादी हिस्सों में बंट जाए और महाज़ आराई शुरू हो जाए, फिर मुल्क की सारी सलाहियतें ज़ाया होने लगती हैं और तरक़्क़ी के रास्ते बन्द हो जाते हैं।

मुल्क के हुक्मरां तबक़े की जो सिर्फ़ तिजारती ज़हन न रखता हो बल्कि मुल्क की ख़ैरख़्वाही भी उसके दिमाग़ के किसी ख़ाने में मौजूद हो यह बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है। मुल्क को बचाना उनका अव्वलीन फ़रीज़ा है फिर उनको आज़ादाना ज़हन और खुले दिमाग़ के साथ सोचने की ज़रूरत है। इस मुल्क के पास बड़ा दिमाग़ मौजूद है, लोगों के अन्दर ग़ौर करने और नताएज तक पहुंचने की सलाहियत मौजूद है, इसको इस्तेमाल करने की ज़रूरत है। अगर दूसरों के दिमाग़ से सोचा गया तो यह ग़ुलामी की बदतरीन शक्ल है जो मुल्क को तबाही के ग़ार में ढकेल देगी!!

ज़रूरत है कि मुल्क को तरक़्क़ी के रास्ते पर चलने दिया जाए। इस मुल्क में यह सलाहियत है कि वह "सुपर पॉवर" बनकर उभरे लेकिन जब अन्दरून ही कमज़ोरियां पैदा की जाने लगें तो कोई दूसरा उसको ताक़त नहीं पहुंचा सकता।

ज़रिये व मक़सद का सही तालमेल

वक़्त की एक अहम ज़रूरत

हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली हसनी नदवी (रह०)

यह दौर ज़राए (माध्यम) की तरक़्क़ी का दौर है। यह बात ढकी–छिपी नहीं है जो साइंस के बराहेरास्त स्टूडेंट नहीं वह भी जानते हैं कि हमारा यह दौर ज़राए की पैदावार का है। इस दौर के बहुत से नाम रखे जा सकते हैं। कोई कहता है कि यह फ़ौलाद का दौर है, कोई कहता है कि एटमिक एनर्जी का दौर है लेकिन मैं समझता हूं कि जो चीज़ सबको कवर करती है वह यह है कि यह दौर है ज़रियों की तरक़्क़ी का। इसमें ऐटमिक इनर्जी भी आ जाती है, इसमें लोहा और फ़ौलाद भी आ जाता है, इसमें साइंस और टेक्नालॉजी भी आ जाती है तो ज़्यादा से ज़्यादा जो चीज़ कवर कर सकती है वह यह है कि यह दौर है ज़राए की तरक़्क़ी का, इन्स्ट्रूमेन्ट्स की तरक़्क़ी का, टेक्नालॉजी की तरक़्क़ी का और माध्यम की तरक़्क़ी का दौर है। यही देखिये कल तक हम जलसे को अड्रेस करते थे तो बहुत ज़ोर से हमको बोलना पड़ता था, आवाज़ किसी को पहुंचती थी, किसी को नहीं पहुंचती थी, अब यह ख़ुदा की कितनी बड़ी देन है और साइंस का कितना बड़ा कान्ट्रिब्यूशन है हालांकि बहुत ही मामूली, बहुत ही हक़ीर और बहुत ही छोटा सा योगदान माइक की शक्ल में हमारे–आपके सामने है मगर यह भी बड़ी नेमत है। मैं आसानी के साथ आपसे बात कर रहा हूं और अगर इससे दस गुना मजमा होता तो मेरी आवाज़ आसानी के साथ वहां तक पहुंचती। एक रोशनी को देख लीजिए कि मोमबत्तियां जलाई जाती थीं फिर बहुत तरक़्क़ी की तो लालटेनों का ज़माना आया फिर और तरक़्क़ी हुई तो गैसों का ज़माना आया मगर अब एक स्विच दबाया तो यह सबका सब हाल जगमगा उठां यह सब ज़राए हैं।

यह सब ज़राए ख़ुदा की नेमत हैं। कोई मज़हबी इन्सान जो इक्स्ट्रीमिस्ट हो, जो बिल्कुल पहाड़ की चोटी पर बैठा हो, वह भी उन ज़राए को ठुकरा नहीं सकता और उनकी तहक़ीर नहीं कर सकता, उनका इनकार नहीं कर सकता, ज़राए अल्लाह की नेमत हैं। हमारे मज़हबी आदमी जो मज़हबी तरीक़े पर सोचते हैं, रिलीजियस थिंकिंग के है, रिलीजियस मेन्टालिटी के हैं वह भी इसको मानते हैं और हमारी मज़हबी किताबें, आसमानी सहीफ़े, उनमें से क़ुरआन शरीफ़ का मैंने कुछ ज़्यादा मुताला किया है, इसमें ख़ुदा ने जगह–जगह अपने बन्दों पर एहसान रखा है जो कुछ दुनिया में वह सब मैंने तुम्हारे लिए ही पैदा किया है:

"वह है जिसने सब तुम्हारे लिए ही पैदा किया है।" (सूरह बक़रहः 29)

वह सब तुम्हारे डिस्पोज़ल में दे दिया है, तुम्हारे हाथ और तुम्हारी मुट्ठी में दे दिया है और वह कहता है:

"हमने इन्सान की इज़्ज़त व अज़मत बढ़ाई और ख़ुश्की व तरी पर उसको सवार कर दिया।" (अलक़ुरआन)

हमने ज़मीन को भी उसकी सवारी बनाया, हवा और फ़िज़ा और समन्दर को भी उसकी सवारी बनाया। मैं समझता हूं जो दूसरी मज़हबी किताबें हैं, उनमें सब ज़राए को, मीस को, आलात और ख़ुदा ने जो चीज़ें पैदा की हैं वह ख़ुदा की बहुत बड़ी नेमत है। अब यही देखिए कि फ़ासले कैसे सिमट गए हैं? मैं लखनऊ से आपके यहां आया हूं, यही फ़ासला शायद एक महीने में तय होता, कितनी बड़ी नेमत है कि रेल पर, हवाई जहाज़ पर, कार पर कोई आदमी बैठे और उस सवारी के हिसाब से आदमी महीनों की मंज़िलें हफ़्तों में और हफ़्तों की मंज़िल दिनों में और दिनों की मंज़िल घंटों में तय कर सकता है, यह सब ख़ुदा की नेमतें हैं।

अब मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह नेमतें,

यह ज़राए, यह मींस, यह आलात ख़ुद काफ़ी नहीं है, इनकी जो क़द्र व क़ीमत, उनकी जो मेरिट, उनकी जो इफ़ादियत है, वह सब मक़ासिद पर मुन्हसिर है कि उनसे क्या काम लिया जाता है? अगर हमें यह न मालूम हो कि हम इससे क्या काम ले सकते हैं तो यह हमारा मुंह देखते रह जाएंगे और हम उनका मुंह देखते रह जाएंगे। कोई फ़ायदा नहीं उठाएंगे और अगर हम उनसे कोई ग़लत काम लें तो यह भी उनकी नाक़द्री हुई और गोया हमने उनसे कोई फ़ायदा नहीं उठाया।

आज की दुनिया की ट्रेजडी यह है कि ज़राए में तो बराबर तरक़्क़ी हो रही है और हर रोज़ नित नए वसाएल व ज़राए का सिलसिला जारी है। हम ख़ुद ज़राए के मतवाले हो रहे हैं। हम पर ज़राए का रोब तारी है। हमारी सोच ऐसी हो गयी है कि हम यह सोचते भी नहीं कि मक़ासिद की भी ज़रूरत व अहमियत है। यह ज़राए नाकाफ़ी व नामुकम्मल और अधूरे हैं बल्कि ख़तरनाक हैं अगर उनके साथ सही मक़ासिद न हों।

हमारी ज़हनी सोच सही नहीं है। अगर हमारे अन्दर मॉरल सेंस नहीं है, अगर हमारे दिल में इन्सानियत का एहतराम, इन्सानियत की इज़्ज़त, इन्सान की इज़्ज़त, इन्सान की मुहब्बत, इन्सानी जान की क़द्र व क़ीमत और इन्सान के बारे में आला तसव्वुर नहीं है, अगर हम कोई इन्सानी कल्चर नहीं रखते तो यह तमाम ज़राए और वसाएल बड़े ख़तरनाक साबित हो सकते हैं और हुए हैं, यह एक खुली हक़ीक़त है। यह कॉमन सेंस की बात है और एक प्रैटिकल चीज़ है।

वह लोग जो ज़राए में बहुत एडवांस हैं, बहुत तरक़्क़ी कर रहे हैं और दुनिया को लीड कर रहे हैं, इन्सानियत की क़यादत की रहे हैं, ख़ुद उनका क्या हाल है? एक जंग–ए–अज़ीम हुई फिर दूसरी जंग–ए–अज़ीम हुई, अब दुनिया तीसरी जंग–ए–अज़ीम के ख़तरों से दो–चार है जिसके बारे में अंदेशा है कि अगर यह हुई तो पूरी नस्ले इन्सानी तबाह हो जाएगी। इसलिए कि मींस हैं लेकिन वह एम्स नहीं हैं जो कंट्रोल कर सकें और ब्रेक लगा सकें। यह तो ऐसा ही है कि किसी नासमझ बच्चे के हाथ में ब्लेड या दिया सलाई दे दी जाए या किसी अपने आदमी को जिसका दिमाग़ी तवाज़ुन बिगड़ चुका हो और वह एबनार्मल हो, कोई ऐसी नाज़ुक चीज़ दे दी जाए जिससे ख़तरा हो।

आज दुनिया की यह हालत है कि उसे साइंस चला रही हैं और जो लोग साइंस, तहज़ीब, तमद्दुन, कल्चर, और सियासत की क़यादत कर रहे हैं उनमें बैलेंस नहीं है। उनमें ज़राए के सही इस्तेमाल का एहसास और शऊर नहीं है, उन्हें किसी मुल्क, किसी क़ौम, किसी शहर, किसी फ़र्द की तबाही की परवाह नहीं, ज़राए और मक़ासिद के अदमे तवाज़ुन के तबाहकुन नताएज हमारा दिन–रात का मुशाहदा हैं।

इन्सानियत की क़िस्मत, इन्सानी तहज़ीब, सोसाइटी का तहफ़्फ़ुज़, ज़राए और मक़ासिद की हमआहंगी पर मुन्हसिर है, इन दोनों में तआउन हो, एक–दूसरे की ख़िदमत का जज़्बा हो, एक–दूसरे को फ़ेवर करे, ताक़त पहुंचाए, ज़राए आगे बढ़कर कहें कि हम ख़िदमत के लिए हाज़िर हैं और मक़ासिद के हाथ में अपनी बागडोर दें।

फिर ख़ुदा का ख़ौफ़, इन्सानियत का एहतिराम, इन्सानी जान की क़द्र व क़ीमत का एहसास और यह शऊर हो कि ज़राए इन्सान के ख़ादिम हैं आक़ा नहीं, सुख पहुंचाने के लिए हैं दुख पहुंचाने के लिए नहीं, आदमी के दिल में ऐसा जज़्बा और एक ऐसी कैफ़ियत होनी चाहिए कि वह ज़राए को एहसासे ज़िम्मेदारी के साथ और बेहतर से बेहतर मक़ासिद के लिए इस्तेमाल करने पर आमादा हो। अगर यह बात नहीं है तो यह सब चीज़ें न सिर्फ़ बेकार होंगी बल्कि इन्सान को तबाह कर देंगी।

हम तारीख़ में देखते हैं कि जब ज़राए नहीं थे लेकिन मक़ासिद अच्छे थे; नियतें अच्छी थीं, दिल अच्छे और पाक थे, जब दिमाग़ रोशन थे, जब ख़ुदा का ख़ौफ़ ग़ालिब था, जब इन्सानों को इन्सानों से हमदर्दी थी तो बहुत थोड़े ज़राए में इन्सानों ने वह काम किये जो आज तक तारीख़ में नक़्श हैं।

दीनी दावत के रहनुमा उसूल

हज़रत मौलाना सैय्यद मुहम्मद राबे हसनी नदवी

इस्लामी दावत का उसूल यह है कि आप ऐसा तरीक़ा–ए–कलाम अख़्तियार करें जिसके बाद इन्सान यह कहने पर मजबूर हो जाए कि उनकी बात सही और मअकूल है। इन्सान के इस अंदाज़ का बहुत असर पड़ता है। आप मुख़ातिब से जिस अंदाज़ में कोई बात कहेंगे उस पर वैसा ही असर पड़ेगा। अगर आप मुख़ातिब से कोई बात जीतने के अंदाज़ में कहेंगे तो उस पर कोई ख़ास असर नहीं होगा। लेकिन अगर आप उससे हमदर्दी के लहजे में बात करेंगे और उसके लिए अपने दिल में तड़प रखेंगे तो उस पर आप की बात का गहरा असर पड़ेगा। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का हाल यह था कि आप लोगों के लिए तन्हाई में तड़पते थे। यह सोचते थे कि लोग जहन्नम में जाएंगे, उनको किसी तरह पकड़ कर रोक लूं कि यह जहन्नम से बच जाएं। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने उसकी एक मिसाल भी दी कि हमारी मिसाल ऐसे ही है जैसे आग जल रही हो, लोग उसमें गिरे जा रहे हों और हम उन लोगों की कमर पकड़–पकड़ कर उस आग से हटा रहें हैं कि भाई आग में न जाओ। मानो रसूलुल्लाह (स0अ0व0) इस मिसाल से उम्मत को यह समझा रहे हैं कि लोगों को जब दावत दी जाए तो दिल में इस क़िस्म की कुढ़न होनी चाहिए कि तुम देख नहीं रहे हो आगे गहरा गढ़ा है, तुम उसमें गिर जाओगे। इसमें सोचने की बात यह है कि आदमी अपने लिए नहीं तड़प रहा है बल्कि सामने वाले से कह रहा है और उसकी भलाई के लिए कह रहा है। अब वह उससे जिस अंदाज़ में कहेगा उसी अंदाज़ में हमदर्दी होगी। ज़ाहिर बात है कि इस अंदाज़ में धमकी नहीं है कि भाई आगे गढ़ा है देखो गिर न जाना। अगर कोई यह अंदाज़ अख़्तियार करे तो सुनने वाला समझ लेगा कि यह हमारी हमदर्दी में कह रहा है, हमको बचाना चाहता है। कुरआन में ख़िताब का यही अंदाज़ सिखाया गया है। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के कलाम का अंदाज़ भी मुहब्बत से भरा था। आप (स0अ0व0) जिस तरह मुहब्बत से बात करते थे और जिस तरह लोगों को मुतवज्जे करते थे, बस दिल में बात उतर जाती थी जबकि उस वक़्त एक मुश्तरक सोसाइटी थी। कुछ लोग मुसलमान हो गए थे और कुछ मुसलमान नहीं हुए थे और फिर दूसरे लोग मुख़्तलिफ़ लोग थे, कुछ मुख़ालिफ़ थे कुछ मुआफ़िक़ थे लेकिन आप (स0अ0व0) का तरीक़ा यह था कि आप (स0अ0व0) सबसे मुहब्बत से बात करते थे और इसका नतीजा यह होता था कि जिसने एक मर्तबा आपकी बात सुन ली और आपसे मिल लिया वह यही कहता कि यह मुख़ालिफ़त वाले आदमी नहीं हैं।

हम और आप एक ऐसे मुल्क में रहते हैं जहां मुख़्तलिफ़ तबक़ात के लोग आबाद हैं और मुख़्तलिफ़ तबियतों के लोग हैं। इसमें मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम का फ़र्क़ न भी किया जाए तब भी यह बात तय है कि लोगों की तबियतें अलग–अलग होती हैं। तबियत सबकी एक नहीं होती। लिहाज़ा अगर हम एक तबियत समझ करके सबसे बात करेंगे तो उसका नुक़सान होगा। हर शख़्स की तबियत उसके माहौल से बनती है। माहौल का बहुत असर पड़ता है। हम सब अपने माहौल के बने हुए हैं। ऐसा नहीं है कि इस्लाम हमारे सामने रखा गया और हमने कुबूल कर लिया बल्कि हम सब अपने माहौल के एतबार से बने हुए हैं और अगर आप माहौल को तब्दील करेंगे तो जिस माहौल को कुबूल करेंगे उसकी क़द्र करते हुए उसको कुबूल करेंगे लिहाज़ा आप एक ऐसा माहौल बनाएं जिसमें इस बात पर ख़ास तवज्जो दी जाए कि हमको सबसे मुहब्बत से मिलना है। सबसे हमदर्दी से बात करना है। सबको यह दिखाना है कि हम तुम्हारे लिए एक भाई की तरह हैं। हम तुम्हारे सच्चे हमदर्द हैं। हम तुम्हें चाहते हैं कि तुम नुक़सान से बच जाओ। हम चाहते हैं कि तुम आराम की ज़िन्दगी गुज़ारो, तुम्हें किसी तरह की कोई तकलीफ़ न हो। तुमको परेशानी न हो, इसलिए कि इन्सानी ज़िन्दगी में परेशानियां बेशुमार हैं। यह ज़िन्दगी अजीब व ग़रीब ज़िन्दगी है। अल्लाह

तआला ने हमको यह ज़िन्दगी इम्तिहान के लिए दी है। इसलिए इसमें बड़ा तनव्वो (विचित्रता) है। इसमें हर आदमी को तरह–तरह के हालात पेश आते हैं और वह हालात ऐसे होते हैं जिनका ताल्लुक़ किसी मज़हब से नहीं बल्कि इन्सानी ज़िन्दगी से होता है। इस दुनिया में जो इन्सान भी ज़िन्दा है तो उसके साथ यह बात लगी हुई है कि परेशानियां आएंगी और उनको दूर करने की तदबीरें अख़्तियार की जाएंगी। अब जो शख़्स भी किसी की परेशानी दूर करने की कोशिश करेगा, वह उस परेशान हाल के नज़दीक महबूब हो जाएगा। लिहाज़ा अगर आप किसी परेशान शख़्स से हमदर्दी से बात कर लीजिए तो उसका दिल आपसे ख़ुश हो जाएगा और ऐसे मौक़े पर मसला किसी ख़ास नज़रिये या मज़हब का नहीं होता बल्कि मसला इन्सानी हमदर्दी का होता है, इन्सानी ताल्लुक़ का होता है कि हम सब इन्सान हैं। तो इन्सान होने की हैसियत से एक–दूसरे से ताल्लुक़ रखें। इन्सान इन्सान है, जानवर नहीं है कि हम उसके साथ जानवरों जैसा मामला करें। ज़ाहिर है कि हम इन्सान के साथ इन्सान जैसा मामला करेंगे यानि भाई जैसा, हम उससे कहेंगे कि भाई तुमको भी ज़िन्दा रहने का हक़ है, हमको भी ज़िन्दा रहने का हक़ है, तुम भी अच्छी तरह ज़िन्दगी गुज़ारो, हम भी आराम से ज़िन्दगी गुज़ारें।

दावत की राह में मज़कूरा अंदाज़ दूसरे को दोस्त और अपना हमदर्द बनाने का बेहतरीन तरीक़ा है। इसका जितना असर पड़ता है उतना असर दलाएल से नहीं पड़ता है और बहस का भी असर नहीं पड़ता है बल्कि इसका उल्टा असर पड़ता है। सालों पहले हमारे मुल्क हिन्दुस्तान में बहुत मुनाज़रे होते थे, ख़ुद हम भी बहुत से मुनाज़रों में शरीक हुए और हमने वहां यह देखा कि दोनों तरफ़ से यह कोशिश होती है कि हम ही जीतें और नतीजा यह होता है कि दोनों जीतते हैं और दोनों हारते हैं, कभी–कभी एक–दूसरे को बुरा कहने और ग़लती निकालने की नौबत आ जाती है, लेकिन उस प्रोग्राम में कोई ख़ातिरख़्वाह हल नहीं निकलता, इसलिए कि ज़ोर–ज़बरदस्ती से किसी बात को मनवाना मुश्किल है। इसके मुक़ाबले में मुहब्बत व हमदर्दी के साथ पेश आने के। इन्सान पर मुहब्बत व हमदर्दी का जो असर पड़ता है वह ग़ैर मामूली होता है। अगर किसी अस्पताल में डॉक्टर हमदर्दी के साथ दवा देता है और मुहब्बत के साथ इलाज करता है तो मरीज़ का आधा मर्ज़ ख़त्म हो जाता है, लेकिन अगर डॉक्टर ने साफ़–साफ़ जुम्लों में बात की तो मरीज़ का दिल टूट जाता है। उसको अगर कल मरना है तो वह आज ही मर जाए। इसी तरह जो शख़्स मरीज़ की मदद करे, मरीज़ के साथ हमदर्दी करे और उसको कुछ दे–दिलाए तो इस अमल से यक़ीनी तौर पर मरीज़ बेहद मुतास्सिर होगा। इसी तरह जो शख़्स मुसीबत में हो, वह इस बात के लिए बिल्कुल बेताब हो कि कोई हमारी मदद करे, हमारी तकलीफ़ दूर करे, तो अगर उसकायह मुतालबा जो कि दिल का मुतालबा है पूरा हो जाए तो बिला शुब्हा वह आपका दीवाना हो जाएगा और फिर वह ज़िन्दगी भर आपको याद रखेगा कि यह फ़लां साहब हैं जो मुसीबत के मौक़े पर हमारे काम आए थे। चाहे कोई भी शख़्स उसकी बात को बिल्कुल न माने लेकिन हम एतराफ़ करेंगे कि यह हमारे फ़लां मौक़े पर काम आए थे। जब हमें परेशानी थी तब यह हमारे काम आए थे। फिर वह जब भी आपसे मिलेगा उसी जज़्बे से मिलेगा कि उन्होंने आड़े वक़्त पर हमारी मदद की थी और मुश्किल वक़्त में हमारे काम आए थे।

मुसलमान को अल्लाह तआला ने ऐसे ही अख़लाक़ का हुक्म दिया है और इसीलिए इस्लाम का नाम "स ल म" रखा है। इस्लाम के माने हैं: अपने को अल्लाह तआला के हवाले कर देना और उसके दूसरे माने "सि ल म" के भी हैं, इसको अल्लाह तआला ने "सि ल म" भी कहा है। "स ल म" के माने अमन के हैं, यानि जो मुसलमान है वह अमन क़ायम करने वाला है। मुसलमान वह है जिसने अपने आप को अल्लाह के हवाले कर दिया है कि अल्लाह जो चाहेगा वह हम करेंगे। हम अपनी मर्ज़ी से कुछ नहीं करेंगे। इसको "इस्लाम" कहा गया और हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने "मुसलमान" नाम रखा है। गोया हमें यह सिखाया गया है कि हम दूसरे को फ़ायदा पहुंचाने वाले हैं। अमन क़ायम करने वाले हैं। दूसरों की हमदर्दी करने वाले हैं। सिर्फ़ यही नहीं कि इबादत कर ली और फ़ारिग़ हो गए। इबादत का ताल्लुक़ अल्लाह तआला से है, इन्सानों से नहीं है। आप जब भी इबादत करेंगे तो वह इबादत अल्लाह तआला के यहां क़ुबूल होगी। लेकिन जहां मामला इन्सानों से ताल्लुक़ का है, वहां यह देखा जाएगा कि उनका मामला लोगों के साथ अच्छा है या नहीं?

तक़्वा क्या है?

सैय्यद बिलाल अब्दुल हयि हसनी नदवी

आमाल का दारोमदारः

हदीस में आता हैः

"आमाल का दारोमदार नियतों पर मौक़ूफ़ है और हर अमल का नतीजा हर इन्सान को उसकी नियत के मुताबिक़ ही मिलेगा। तो जिसकी हिजरत दुनिया हासिल करने के लिए हो या किसी औरत से शादी की ग़रज़ से हो तो उसकी हिजरत उन्हीं चीज़ों के लिए होगी जिनके हासिल करने की नियत से उसने हिजरत की है।" (बुख़ारीः 1)

यानि आदमी की जैसी नियत होगी अल्लाह उसी के मुताबिक़ उसको नवाज़ेंगे, यहां तक कि हदीस में हिजरत जैसे अमल के बारे में फ़रमा दिया गया कि अगर आदमी हिजरत अल्लाह और उसके रसूल के लिए करता है तो यक़ीनन यह हिजरत अल्लाह और उसके रसूल के लिए है, लेकिन अगर अपने नफ़्स के लिए हिजरत करता है, शादी के लिए हिजरत करता है, कारोबार के लिए हिजरत करता है या दुनिया के और मक़ासिद उसके सामने हैं तो यह सारी बड़ी से बड़ी चीज़ें और बड़े से बड़े काम अल्लाह के यहां उनकी कोई क़ीमत नहीं। यहां तक कि अगर आदमी जिहाद भी अल्लाह के लिए नहीं करता बल्कि सिर्फ़ अपने मुल्क के लिए करता है या अपनी ज़ात और इज़्ज़त के लिए करता है तो अल्लाह तआला के यहां उसकी कोई क़ीमत नहीं है। जिहाद की क़ीमत अल्लाह के यहां जब है जब आदमी अल्लाह को राज़ी करने के लिए जिहाद करे। अल्लाह के दीन के लिए जिहाद करे कि अल्लाह का दीन बुलन्द हो, तब हक़ीक़त में वह अल्लाह के रास्ते में जिहाद है और अगर जिहाद का मक़सूद अपनी जमाअत को बना लिया जाए या अपने इदारे मक़सूद बना लिए जाएं तो यह भी ख़तरनाक बात है। मक़सद सिर्फ़ अल्लाह का दीन और उसकी रज़ा होनी चाहिए। अगर ऐसा मिज़ाज बनेगा तो हकीकत में यही तक़्वे का मिज़ाज है और अगर अल्लाह न करे हमने अपने इदारों को मक़सूद बनाया या अपने कामों को मक़सूद बनाया तो हमें समझना चाहिए कि हमने तरतीब ग़लत कर दी। इसलिए कि जो वसाएल हैं उनको हमने मक़ासिद का दर्जा दे दिया और जो मक़ासिद हैं उनको वसाएल का दर्जा दे दिया और यह ऐसी उल्टी तरतीब है जिसके बाद काम बेहक़ीक़त हो जाते हैं।

मतलूब चीज़

अल्लाह के नज़दीक मतलूब चीज़ तक़्वा की अस्ल ज़िन्दगी और तक़्वे का मिज़ाज और दिल में तक़्वे की कैफ़ियत का होना है। इसीलिए कुरआन मजीद में अल्लाह तआला ने क़ुर्बानी के बारे में यह चीज़ इरशाद फ़रमाई किः

"अल्लाह को उनका गोश्त और ख़ून हरगिज़ नहीं पहुंचता, हां उसको तुम्हारे (दिल) का तक़्वा पहुंचता है।" (सूरह हजः 37)

यानि आदमी जानवर की क़ुर्बानी करता है, तो अगर अल्लाह के लिए करता है और अल्लाह की रज़ा मक़सूद है तो साफ़ कह दिया गया है कि वह क़ुर्बानी अल्लाह को पहुंचेगी और अगर क़ुर्बानी से मक़सूद सिर्फ़ गोश्त–पोस्त है, जैसा कि क़ुर्बानी के मौक़े पर आजकल तमाशे होते हैं, बाक़ायदा मुक़ाबले होते हैं कि फ़लां ने एक लाख का बकरा ख़रीदा और फ़लां ने दो लाख का बकरा ख़रीदा फिर उसकी नुमाइश होती है तो यह सारी चीज़ें अल्लाह को इन्तिहाई नापसंद हैं।

क़ुर्बानी एक मिसाल है। इसी तरह हम अपने दीन के कामों की भी ख़ुदा न ख़्वास्ता नुमाइश करते हैं और अल्लाह की रज़ा के लिए वह काम नहीं करते बल्कि ख़ुदा न ख़्वास्ता अपनी शोहरत व इज़्ज़त के लिए वह काम करते हैं तो सच्ची बात यह है कि यह सब मेहनत बेसूद है।

तक़्वे का हक़

"ऐ ईमान वालो! अल्लाह से उसी तरह डरते रहो

जैसे उससे डरना चाहिए और न मरना मगर इस हाल में कि तुम मुसलमान हो।" (आले इमरानः 102)

इस आयत में ईमान वालों को यह हुक्म दिया गया है कि जिस तरह अल्लाह से डरना चाहिए, उसका लिहाज़ होना चाहिए, दिल के अन्दर उसका तक़्वा होना चाहिए और आमाल में जिस तरह से तक़्वे का ज़ुहूर होना चाहिए, वह उसका हक़ है जो अदा किया जाए। जब यह आयत नाज़िल हुई तो इसमें तक़्वे के हुक्म की बुनियाद पर हज़रात–ए–सहाबा (रज़ि0) ने यह समझा कि यह एक मुसलसल इताअत है जिसमें कहीं भी नाफ़रमानी का शाएबा न हो, बाज़ हदीसों में इसकी तरफ़ इशारा भी है कि ऐसा तक़्वा तभी हो सकता है जब उसमें नाफ़रमानी की कोई मिलावट न हो यानि अल्लाह का ऐसा शुक्र अदा किया जाए जिसमें नाशुक्री का कोई शम्मा न हो और आदमी पूरी तरह से अल्लाह की बारगाह में मुत्वज्जह हो जाए और ज़रा भी ग़फ़लत पैदा न हो। बाज़ हदीसों में इसकी तरफ़ इशारा मौजूद है। हज़रात–ए–सहाबा (रज़ि0) के बारे में यह बात आती है कि इस आयत–ए–शरीफ़ा के नाज़िल होने के बाद उन्होंने अल्लाह की बन्दगी व इबादत के लिए अपनी मेहनत में ऐसा इज़ाफ़ा कर लिया कि जिससे बाज़ मर्तबा लगता था कि अब उनकी बर्दाश्त से बाहर हो जाएगा। बाज़ सहाबा के बारे के आता है कि वह नमाज़ों में खड़े रहते थे यहां तक कि उनके पैरों पर वरम आ जाता था, इसके अलावा भी बहुत से सहाबियों ने इबादत में इन्तिहाई दर्जे का इन्हिमाक पैदा कर लिया था।

सहाबा किराम (रज़ि0) की खुसूसियत

सहाबा किराम (रज़ि0) की एक खुसूसियत यह थी कि उन्हें जो हुक्म मिलता था वह उसमें यह नहीं देखते थे कि इस पर अमल कितना हमारे बस में है और कितना बस से बाहर है। इसलिए कि वह जानते थे कि अल्लाह की तरफ़ से हुक्म आया है और नबी (स0अ0व0) के ज़रिये से हुक्म मिला है जो रहमतुल लिल आलमीन हैं, इसलिए हमें इस पर बहर–ए–सूरत अमल करना है। इस सिलसिले में हज़रात–ए–सहाबा के बहुत से वाक़्यात हैं जिनसे पता चलता है कि उन्हें जहां हुक्म दिया गया उसी लम्हे उन्होंने उस पर अमल किया, जैसेः एक मर्तबा आप (स0अ0व0) ने ख़ुत्बे के दौरान फ़रमाया कि "जो जहां मौजूद है वहीं बैठ जाए" हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि0) उस वक़्त मस्जिद में दाख़िल हो रहे थे, जब उन्होंने हुज़ूर (स0अ0व0) की यह आवाज़ सुनी तो वह रास्ते में ही बैठ गए। आप (स0अ0व0) ने फ़रमायाः "उठ कर आगे आ जाओ वहां क्यों बैठ गए?" उन्होंने फ़रमाया कि "मुझे कहां ज़ेबा था कि आप कोई हुक्म फ़रमाएं और फिर मुझे उसमें सोचने का भी कोई मौक़ा हो।"

इस तरह हज़रात–ए–सहाबा (रज़ि0) के न जाने कितने वाक़्यात हैं।

एक मर्तबा एक सहाबी आए और वह सोने की अंगूठी पहने हुए थे। आपने उनको टोका तो उन्होंने फ़ौरन उतार की फेंक दी फिर जब रसूलुल्लाह (स0अ0व0) तश्रीफ़ ले गए तो लोगों ने उनसे कहा कि अब अंगूठी उठा लो और अपने घरवालों के इस्तेमाल में ले आना यानि तुम्हारी बीवी या घर के लोग इस्तेमाल कर लेंगे लेकिन उन्होंने फ़रमाया किः

"हुज़ूर (स0अ0व0) ने जिस चीज़ के बारे में यह बात कह दी कि यह जाएज़ नहीं है, मैंने उसको उतार कर फेंक दिया, अब दोबारा मैं उसको उठा लूं यह अच्छा मालूम नहीं होता।"

अलग़रज़ इस क़िस्म के न जाने कितने वाक़्यात हैं। इसीलिए उनके बारे में मशहूर है किः

जहां कर दिया गरम गरमा गए वह
जहां कर दिया नरम नरमा गए वह

यह बिल्कुल हक़ीक़त है कि उनकी लगाम शरीअत के क़ब्ज़े में थी। उनसे जो कहा जाता वह उसी पर अमल करते थे। इसीलिए जब यह आयत नाज़िल हुईः

"ऐ ईमान वालो! अल्लाह से उसी तरह डरते रहो जैसे उससे डरना चाहिए और न मरना मगर इस हाल में कि तुम मुसलमान हो।" (आले इमरानः 102)

तो सहाबा (रज़ि0) ने अपनेआप को मिटा दिया और खपा दिया। इसीलिए फिर यह आयत भी नाज़िल हुई किः

"तो जितना हो सके तक़्वे को लाज़िम पकड़ो।" (सूरह तग़ाबुनः 16)

निकाह के चन्द मसाएल

मुफ़्ती राशिद हुसैन नदवी

मेहर के मसाएल

जब दस दिरहम से कम मेहर मुक़र्रर करे:

अगर किसी सामान या रुपये–पैसे को मेहर मुक़र्रर किया लेकिन उसकी मालियत दस दिरहम यानी 31/ग्राम चांदी से कम है तो इतना इज़ाफ़ा करना ज़रूरी होगा जिससे 31/ग्राम चांदी के बक़द्र मालियत हो जाए। (हिदाया मअ अलफ़तेह: 3/208)

और अगर अक़्द के वक़्त इतनी रक़म मुक़र्रर की जो दस दिरहम के बक़द्र थी लेकिन जब देने का क़स्द किया तो मालियत दस दिरहम से घट गई है तो ऐसी सूरत में वाजिब तो उतनी ही रक़म होगी जितनी मुक़र्रर थी, ख़्वाह उसकी मालियत दस दिरहम से कम ही क्यों न हो गई हो लेकिन मुनासिब यही है कि शौहर दस दिरहम के बक़द्र करके दे। (हिन्दिया: : 1/302)

किसी सामान या जानवर को बतौर मेहर मुक़र्रर करना:

कपड़े, ज़ेवर या किसी जानवर को भी मेहर बनाया जा सकता है लेकिन शर्त यही है कि उनकी मालियत दस दिरहम से कम न हो नीज़ उनकी जिन्स तय कर दी हो। अगर जिन्स तय नहीं की जैसे: कहा कि कपड़ा देंगे, जानवर देंगे। कपड़े की और जानवर की जिन्स नहीं बताई तो तअय्युन सही नहीं होगा, लिहाज़ा मेहर–ए–मिस्ल लाज़िम होगा और अगर जिन्स बता दी और सिनअत नहीं बताई जैसे: कहा कि बकरी देंगे या सूती कपड़ा देंगे तो दरमियानी बकरी और दरमियानी मालियत का सूती कपड़ा भी दे सकता है और उनकी क़ीमत भी दे सकता है। (हिदाया मअ अलफ़तेह: 3/335)

पूरा मेहर देना कब वाजिब होता है?

अगर निकाह के बाद औरत से ख़ास ताल्लुक़ क़ायम करने के बाद या ख़लवत–ए–सहीहा होने के बाद तलाक़ दे दी या उन दोनों चीज़ों के बाद या उनसे पहले ही शौहर का इन्तिक़ाल हो गया तो अगर कोई मेहर मुक़र्रर कर लिया था तो पूरा मेहर वाजिब हो जाएगा और अगर मेहर मुक़र्रर नहीं किया था तो मेहर–ए–मिस्ल वाजिब हो जाएगा। इसी तरह अगर किसी ने एक या दो तलाक़े दीं फिर इद्दत के अन्दर ही दोबारा निकाह किया तो ख़्वाह दुख़ूल या ख़लवत करे या न करे, पूरा मेहर वाजिब हो जाएगा। (शामी: 2/358)

और अगर इन शक्लों में से किसी के पेश आने से पहले तलाक़ दी तो अगर कोई मेहर मुक़र्रर किया है तो उसका निस्फ़ वाजिब हो जाएगा और अगर कोई मेहर मुक़र्रर नहीं किया था तो मुतआ वाजिब होगा। (हिदाया मअ अलफ़तेह: 3/211)

मेहर–ए–मिस्ल क्या है?

ऊपर बता चुके हैं कि मेहर–ए–मिस्ल का मतलब यह है कि औरत की बहनों या फूफियों या चचाज़ाद बहनों का जो मेहर मुक़र्रर किया गया हो वही उसका मुक़र्रर किया जाए, जबकि वह उम्र व हुस्न व जमाल वग़ैरह में उसके हमपल्ला हों। अगर इस तरह के उमूर में यह उनसे बढ़कर हो तो उसी एतबार से उसका मेहर बढ़ा दिया जाएगा और अगर इन बातों में उनसे कम मर्तबे की हो तो उसी एतबार से उसका मेहर घटा दिया जाए। (शामी: 2/384–385)

मुतआ क्या है?

ऊपर बयान किया गया कि अगर कुछ मेहर मुक़र्रर किये बग़ैर निकाह किया और ख़ास ताल्लुक़ क़ायम करने या ख़लवते सहीहा करने से पहले तलाक़ दे दी तो मुतआ वाजिब होगी। मुतआ का मतलब यह है कि मर्द औरत को एक जोड़ कपड़ा दे। इसमें चार चीज़ें देनी होंगी: 1– कुर्ता 2– ओढ़नी 3– पायजामा 4– चादर और यह एक जोड़ कपड़े दोनों की माली हालत के एतबार से दरमियानी क़ीमत के दिये जाएंगे। (हिन्दिया: 1/304)

इस औरत को मुतआ देना क्योंकि मेहर की जगह पर है लिहाज़ा वाजिब है। बक़िया तमाम मुतलक़ा औरतों को मुतआ देना मुस्तहब है यानि जिनका मेहर मुक़र्रर किया है, अगर उनको दुख़ूल या ख़लवत–ए–सहीहा के

बाद तलाक़ दी है तो जो मेहर मुक़र्रर किया है उसका निस्फ़ देना वाजिब है और मुतआ देना मुस्तहब है। (हिन्दियाः 1/304)

मुतआ के लफ़्ज़ी माने किसी भी क़िस्म का फ़ायदा हासिल करने के हैं। मेहर की जगह पर दिये जाने वाले मुतआ को ''मुतअतुल तलाक़'' कहा जाता है।

क़ुरआन मजीद में जिस औरत का मेहर मुक़र्रर न किया गया हो और उसे दुख़ूल से पहले तलाक़ दे दी जाए तो उसके मुतआ का ज़िक्र इन अल्फ़ाज़ से किया हैः

"तुम पर कोई गुनाह नहीं अगर तुम अपनी उन बीवियों को तलाक़ दो जिनसे तुमने न ताल्लुक़ात क़ायम किये हैं, न उनका मेहर मुक़र्रर किया है, उन्हें कुछ दे दिला दो, ख़ुशहाल अपनी गुंजाइश के मुताबिक़ और तंगदस्त अपनी गुंजाइश के मुताबिक़ दस्तूर के मुताबिक़ तोहफ़ा हो जो एहसान करने वालों पर लाज़िम है।" (सूरह बक़राः 236)

और तमाम मुतल्लक़ात को मुतआ देने का ज़िक्र करते हुए इरशाद हैः

"और अपनी मुतअल्लक़ा औरतों को दस्तूर के मुताबिक़ कुछ दे दिलाकर रुख़्सत करो, यह अहले तक़वा पर लाज़िम है।" (सूरह बक़राः 241)

ख़लवत–ए–सहीहा का मतलबः

ऊपर कई जगह ख़लवत–ए–सहीहा का ज़िक्र आया। ख़लवत–ए–सहीहा का मतलब यह होता है कि ज़ौजैन के दरमियान जिमाअ से किसी तरह की रुकावट के बग़ैर तन्हाई पाई जाए यानि न तो औरत की शर्मगाह में कोई ऐसा मर्ज़ हो जिसके सबब जिमाअ न हो सकता हो, यह हिस्सी मानेअ कहलाता है। न तो हैज़ जैसा कोई शरई मानेअ हो। न उनके दरमियान कोई शख़्स मौजूद हो, ख़्वाह वह सोया हुआ ही क्यों न हो या अंधा ही क्यों न हो। अलबत्ता अगर ग़ैर आक़िल छोटा बच्चा मौजूद हो ख़लवत–ए–सहीहा मानी जाएगी और अगर दोनों में से किसी को ऐसी बीमारी लाहक़ हो जिसके सबब जिमाअ मुमकिन न हो तब भी ख़लवत–ए–सहीहा नहीं मानी जाएगी।

ख़ुलासा यह कि इन रुकावटों में से कोई रुकावट और मानेअ मौजूद न हो तो ख़लवत–ए–सहीहा होगी जो कि जिमाअ के क़ायम मक़ाम मानी जाएगी और रुकावट मौजूद हो तो ख़लवत फ़ासिद होगी और उसको जिमाअ के हुक्म में नहीं माना जाएगा। (हिन्दियाः 1/304)

मेहर–ए–मोअज्जल और मेहर–ए–मोअज्जल

मेहर–ए–मोअज्जल नक़द मेहर को कहते हैं और मेरह–ए–मोअज्जल उसको कहते हैं जो जिसको उधार रखा जाए ख़्वाह उसके लिए कोई ख़ास तारीख़ तय की जाए या सिर्फ़ उधार रखा जाए, कोई तारीख़ तय न की जाए। (हिन्दियाः 1/318)

इसलिए कि मुअज्जम तबरानी (23/24/रक़म 60) में हज़रत आयशा (रज़ि0) से मरवी है आंहज़रत (स0अ0व0) ने मेहर की अदायगी के बाद उनकी रुख़्सती करायी। इसी तरह जब आंहज़रत (स0अ0व0) ने हज़रत अली (रज़ि0) की शादी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि0) से करायी तो उनको हुक्म दिया कि कुछ दिये बग़ैर अपनी अहिल्या के पास मत जाना। (मुजमअ–अल–ज़वाएदः 4/520, रक़मः 7498)

जब मेहर की अदायगी से पहले बीवी मर जाएः

अगर बीवी का इन्तिक़ाल हो जाए और शौहर ने अभी तक मेहर अदा न किया हो तो मेहर माफ़ नहीं होगा। अब शौहर पर लाज़िम है कि मेहर की रक़म बीवी के वारिसों को दे। उन वुरसा में ख़ुद चूंकि शौहर भी शामिल है लिहाज़ा अपने हिस्से का वह ख़ुद हक़दार होगा यानि मरने वाली बीवी की ख़ुद उससे या किसी और शौहर से कोई औलाद मौजूद नहीं है तो आधे का हक़दार शौहर होगा और आधा मेहर मरने वाले के दूसरे वारिसों जैसेः मां–बाप, भाई–बहन, भतीजा वग़ैरह पर शरई उसूलों के मुताबिक़ तक़सीम कर दिया जाएगा और अगर मरने वाली की औलाद मौजूद हो तो चौथाई मेहर का हक़दार शौहर होगा और बाक़ी औलाद और दूसरे वारिसों को मिलेगा;

"और जो कुछ तुम्हारी बीवियां छोड़ जाएं अगर उनमें औलाद न हो तो तुम्हारा आधा है और अगर उनके औलाद हो तो वह जो भी छोड़ जाएं उसका चौथाई तुम्हारा है।" (सूरह निसाः 21)

मेहर माफ़ कराना:

लोगों में रिवाज है कि अपनी या बीवी की मौत के वक़्त मेहर माफ़ कराते हैं। ज़ाहिर है कि इस तरह के हालात में बीवी के पास माफ़ करने के अलावा कोई चारा–ए–कार नहीं होता। अक्सर वह दिल से माफ़ भी नहीं करती लिहाज़ा यह माफ़ी मोतबर नहीं है। इस माफ़ी के बावजूद मेहर माफ़ नहीं होगा। (अलबहरुर्राएक़ः 3/151)

मुश्रिकीन की मांगे और कुरआन का ऐलान

अब्दुस्सुब्हान नाख़ुदा नदवी

अऊज़ुबिल्लाहि मिनश्शैतानिर्रजीम
बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"और यह लोग कहते हैं कि आख़िर उन पर उनके रब की तरफ़ से कोई निशानी क्यों नहीं उतरी, आप कहिये ग़ैब तो बस अल्लाह ही के हाथ में है बस इन्तिज़ार करो मैं भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार करने वालों में हूं।" (सूरह यूनुसः 20)

"और यह लोग कहते हैं कि आख़िर उन पर उनके रब की तरफ़ से कोई निशानी क्यों नहीं उतरी" यह कहने वाले मुश्रिकीन थे जो यह बावर कराना चाहते थे कि हम तो बस मोजज़े के इन्तिज़ार में हैं जैसे ही हम अपना फ़रमाइशी कोई मोजज़ा देखेंगे बस सीधे इस्लाम कुबूल कर लेंगे। यह ईमान न लाने के लिए महज़ एक बहाना था वरना उनका हाल यह था कि फ़रमाइशी मोजज़ात देखने पर भी क़तअन ईमान न लाते। उनके लिए सबसे बड़ा मोजज़ा कुरआन करीम था। बार–बार उनसे कहा गया कि अगर तुम्हारे अन्दर सलाहियत है तो इस जैसी कोई सूरत ले आओ, इसके लिए दुनिया भर के इन्स व जिन्न से मदद ले लो लेकिन इसके जवाब में उनके नज़दीक सिवाए ख़ामोशी के कुछ न था और मोजज़ात के ताल्लुक़ से वह बहाने बना सकते थे और उन्होंने बहाने बनाए भी लेकिन अरबी ज़बान तो उनकी अपनी मादरी ज़बान थी, उनको इसका दावा था कि वह इस ज़बान के मेयारे कमाल तक पहुंचे हुए हैं। यह भी हक़ीक़त है कि अरबों के नज़दीक नसब के ताने के बाद सबसे बड़ा ताना यह था कि वह अरबी नहीं जानता। इसके बावजूद कुरआन करीम के चैलेंज पर चैलेंज के जवाब में पूरे अरब की ख़ामोशी इसकी दलील थी कि वह हार मान चुके हैं और इस कलाम के अल्लाह का कलाम होने की सबसे बड़ी निशानी उनके पास आ चुकी थी। इसके बाद मज़ीद निशानियों का मुतालबा करना अपनी खीज को मिटाने की एक कोशिश के अलावा कुछ और नहीं था।

मुश्रिकीन की एक तादाद ज़ाहिर परस्त और माद्दा परस्त थी। यह वह लोग थे जो हमेशा देखी–भाली चीज़ पर यक़ीन करते थे, इसलिए उन लोगों की हमेशा यह मांग रही कि जब तक हम कोई फ़रमाइशी निशानी मुकम्मल होती न देखेंगे उस वक़्त तक ईमान लाने का सवाल ही नहीं उठता।

"आप कहिये ग़ैब तो बस अल्लाह के हाथ में है" इनसे गोया कहा जा रहा है कि कमाले इन्सानी यह है कि देखी जाने वाली चीज़ों से अनदेखी चीज़ों तक पहुंचा जाए, जिसे इन्सान ने देख लिया उसे जानकर उसने कौन सा कमाल किया? यह सतह तो इन्तिहाई कम अक़्ल बल्कि बेअक़्ल जानवर भी किसी न किसी दर्जे में रखते हैं।

यह कहकर यह बयान करना भी मक़सूद है कि अस्ल निज़ाम ग़ैब से चल रहा है। ज़ाहिरी निज़ाम तो ग़ैबी निज़ाम तक पहुंचने और उस पर यक़ीन करने का एक ज़रिया है। जो लोग ज़ाहिरी निज़ाम को अस्ल क़रार देकर ग़ैबी निज़ाम को सिरे से तस्लीम नहीं करते या ग़ैबी निज़ाम को इत्तिफ़ाक़ात का नतीजा क़रार देते हैं, कुरआन का ऐसे लोगों के बारे में फ़ैसला यह है कि वह अल्लाह के निज़ाम को समझने या समझाने में "मक्र" से काम लेते हैं और बात को इस तरह कुबूल नहीं करते जिस तरह वह हक़ीक़त में है। उनके मुक़ाबले में जो लोग ग़ैबी निज़ाम को अस्ल और बुनियाद क़रार देते हैं और ज़ाहिरी निज़ाम को ग़ैबी निज़ाम पर यक़ीन का ज़रिया समझते हैं और इसका यक़ीन रखते हैं कि जो कुछ ज़ाहिर है वही सबकुछ नहीं बल्कि सबकुछ कहीं और है, जहां के फ़ैसले इस ज़ाहिरी निज़ाम पर असरअंदाज़ होते हैं, अस्ल ताक़त का सरचश्मा कोई और है। कुरआन–ए–हकीम ऐसे लोगों को निशानियों में ग़ौर–फ़िक्र करने वाला क़रार देकर उनकी हौसला अफ़ज़ाई करता है। उनको "ऊलुल अलबाब" यानि हक़ीक़ी अक़्लमन्द क़रार देता है, उनके बारे में यह उम्मीद ज़ाहिर करता है कि ऐसे लोग सही फ़िक्र से काम लेंगे तो सही नतीजे तक ज़रूर पहुंच जाएंगे। इस मुबारक सूरत का एक मौजूअ मज़हर और हक़ीक़त के दरमियान फ़र्क़ को वाज़ेह करना भी है, इसलिए जा–बजा "ज़ाहिर" और "ग़ैब" पर रोशनी डाली गई है। मुश्रिकीने मक्का अगरचे हक़ीक़त को मानते थे और उसका एतक़ाद रखते कि तमाम कामों की तदबीर करने वाला अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त है लेकिन इसके बावजूद मज़ाहिर में ऐसे उलझ गए थे कि ज़ाहिर परस्त होकर रह गए थे,

इसलिए आप (स0अ0व0) की सच्चाई को अन्दर ही अन्दर जानने के बावजूद मानने के लिए तैयार नहीं थे और निशानियों का मुसलसल मुतालबा किये जा रहे थे।

हर इन्सान फ़ितरी तौर पर यह तस्लीम करने पर मजबूर है कि जो कुछ वह देखता है उसके अलावा बहुत कुछ है, जो वह देखता नहीं और जिसके बारे में उसे मालूम नहीं लेकिन उसका वजूद ज़रूर है। अब देखना यह है कि जो शख़्स खुल्लमखुल्ला चैलेंज भरे अंदाज़ में अल्लाह का नाम लेकर बहुत सी ग़ैबी चीज़ों का दावा करे, जबकि हालात इस दावे के मुताबिक बिल्कुल भी साज़गार न हों बल्कि मुकम्मल उसके दावे के मुख़ालिफ़ जा रहे हों फिर भी उसके दावे के मुताबिक़ वह चीज़ हर्फ़ ब हर्फ़ पूरी हो जाए तो अक़्ल यह कहती है कि उसे न सिर्फ़ यह कि सच्चा समझा जाए बल्कि वह अपने ताल्लुक़ से अल्लाह के हवाले से जो दावा करता है उसे भी तस्लीम किया जाए।

मक्की दौर में जब मुसलमानों के लिए अपना वजूद बचाना इन्तिहाई मुश्किल नज़र आ रहा था तो कुरआन करीम ने बार–बार यह दावा किया और बहुत इसरार से किया कि अहले मक्का शिकस्त खांएगे, पीठ फेर कर भागेंगे, ख़ुद मक्का ही में ख़ुद मक्का ही में यानि अपनी ही ज़मीन पर एक शिकस्त खुर्दा क़ौम बनेंगे, मुहम्मद (स0अ0व0) ग़ालिब आएंगे, अल्लाह का नूर पूरा होकर रहेगा, मुहम्मद (स0अ0व0) जिस दीन की दावत दे रहे हैं वह ग़ालिब आकर रहेगा, कुफ़्र व शिक्र आहिस्ता–आहिस्ता इस सरज़मीन से सिमटता चला जाएगा, मुहम्मद (स0अ0व0) भी देखेंगे और मुश्रिकीन भी देखेंगे कि कौन फ़ित्ने में पड़ता है? तुम भी इन्तिज़ार करो और मैं भी इन्तिज़ार करता हूं, देखें किसका इन्तिज़ार नतीजाख़ेज़ रहता है और किसका इन्तिज़ार उसके मुंह पर मारा जाता है? तुम अपने तमाम शरीकों को बुलाओ और मेरे ख़िलाफ़ जो साज़िश करना चाहो करो मुझे मोहलत ही न दो, देखें तुम क्या कर सकते हो? यह तमाम कुरआन करीम के दावे थे और खुलकर किए गए थे। मुश्रिकीन के लिए बहुत ही आसान था कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का ख़ात्मा करते और अपनी जीत का जश्न मनाते। इसलिए कि तमाम वसाएल उनके पास थे लेकिन हम देखते हैं कि यह तमाम दावे हर्फ़ ब हर्फ़ पूरे हुए और उनमें से कोई एक दावा भी जो अपने अंदर हर तरह का चैलेंज रखता था जुज़्वी तौर पर पूरो होने से रह नहीं गया। कुरआन करीम की आयतों की रोशनी में देखा जाए तो "लौला उन्ज़िला अलैहि आयतुन मिन रब्बिही" कह कर मुश्रिकीन ने जब निशानी का मुतालबा किया तो "फ़कुल इन्नमल ग़ैबु लिल्लाह" कहकर उनको वाक़्ई निशानी दी गयी और यह कहा गया कि जितने दावे हमने किये हैं वह सब ग़ैब हैं लेकिन वह पूरे होकर रहेंगे। तुम भी इन्तिज़ार करो मैं भी इन्तिज़ार करूंगा। वह अमलन पूरे हुए लिहाज़ा निशानी तो पूरी हो गयी, इसके बाद मुश्रिकीन को अपने वादे के लिहाज़ से ईमान लाना चाहिए था लेकिन वह नहीं लाए। इससे एक और निशानी भी पूरी हुई वह यह कि अल्लाह ने उनके बारे में यह फ़रमाया था कि यह लोग निशानियां देख लेंगे तब भी ईमान नहीं लाएंगे। उन्होंने कुरआन करीम के दावों को पूरा होते हुए देखा और ख़ुद कुरआन की पेशीनगोई के मुताबिक़ ईमान से महरूम रहे। हां! उनकी नस्ल जो मक्की दौर में पैदा ही नहीं हुई थी या बुलूग़ की उम्र तक नहीं पहुंची थी वह ईमान लाई।

"ग़ैब तो बस अल्लाह के हाथ में है" कह कर यह भी कहा जा रहे है कि इन्सान अल्लाह पर एतमाद रखे, ज़ाहिरी असबाब में इस क़द्र उलझकर न रह जाए कि हर चीज़ को ज़ाहिरी असबाब के लिहाज़ से नापने लग जाए। कभी–कभी ज़ाहिरी असबाब बड़े मायूस करने वाले होते हैं और इन्सान अगर उसकी बुनियाद पर अपने कामों को देखे तो सिवाय मायूसी के उसके हाथ कुछ न लगे। इसलिए जो लोग अल्लाह के कलिमे की बुलन्दी के लिए काम करते हैं उनके लिए हिदायत है कि वह ग़ैब पर भरोसा रखें, ज़ाहिरी हालात देखकर वह तदबीर ज़रूर करें लेकिन नताएज को ज़ाहिरी हालात पर मुन्हसिर न समझें। ग़ैब के पर्दे से क्या कुछ ज़हूर में आने वाला है कौन जानता है? यह मुबारक टुकड़ा हर दीन की दावत देने वाले के सामने उम्मीद के दिये रोशन करता है ताकि काम करने वाले कभी हालात से मायूस होकर हरगिज़ अपना काम न छोड़ें।

"बस इन्तिज़ार करो मैं भी तुम्हारे साथ इन्तिज़ार करने वालों में हूं " यह टुकड़ा इसकी बशारत देता है कि हालात चाहे जिस क़द्र सख़्त हों, नतीजा अक्सर अहले हक़ के हक़ में ज़ाहिर होता है। दोनों के इन्तिज़ार में फ़र्क़ है, अहले बातिल का इन्तिज़ार यह है कि अहले हक़ फ़ना हो जाएं और हक़ का निशान मिट जाए। अहले हक़ का इन्तिज़ार यह है कि अल्लाह की ज़मीन से हर तरह के फ़साद का ख़ात्मा हो जाए। हुक्म इसका है अहले हक़ अहले बातिल का चैलेंज कुबूल कर लें और सब्र व इस्तिक़ामत का नमूना बनकर दिखाएं और यह साबित करें कि उनकी दावत उनके अख़लाक़, उनके उसूल और उनके किरदार का दुनिया के पास कोई जवाब नहीं।

सहाबा किराम (रज़ि0) की मुहब्बत

मौलाना सैय्यद महमूद हसन हसनी नदवी (रह०)

मुहब्बत बड़ी अहम और नाज़ुक चीज़ है। यह इन्सान को उरूज पर पहुंचाती है और इसके ज़रिये से आदमी अल्लाह से बड़ा क़रीब हो जाता है लेकिन कभी–कभी यही मुहब्बत आदमी को बहुत गिरा देती है और गिराती ही चली जाती है। अगर मुहब्बत अल्लाह के लिए है तो इसके बड़े ग़ैर मामूली असरात व नताएज ज़ाहिर होते हैं और अगर ग़ैरुल्लाह की मुहब्बत अल्लाह के साथ है तो वह मुहलिक बन जाती है और तबाहकुन होती है। यही वह चीज़ है जिसमें दुनिया की क़ौमें तबाह हुईं हैं और दुनिया के अन्दर बेशुमार मज़ाहिब के वजूद का भी यही सबब है। यह ऐसी चीज़ है जिसकी वजह से दीन बिगड़े हैं और उनमें तहरीफ़ हुई है, क्योंकि शैतान मुहब्बत के रास्ते से आदमी को मारता और तबाह करता है। इसलिए कि जब वह आदमी को नमाज़ों के ज़रिये तबाह नहीं कर पाता, या कुरआन पाक की तिलावत में ख़लल नहीं डाल पाता तो फिर वह मुहब्बत के रास्ते से आदमी को बर्बाद करता है। इसीलिए मशाएख़ के यहां मुहब्बत पर हमेशा ख़ास निगाह रखी जाती है ताकि मुहब्बत की सुई सही रहे।

शेख़ुल इस्लाम अल्लामा इब्ने तैमिया (रह0) ने बड़ी बलीग़ व अहम बात लिखी है कि यहूद व नसारा की गुमराही का सबब यह है कि उन्होंने अपने–अपने नबियों से मुहब्बत अल्लाह के साथ की यानि ईसाईयों ने हज़रत ईसा (अलै0) से मुहब्बत में ग़ुलू किया और अल्लाह की मुहब्बत के साथ हज़रत ईसा से मुहब्बत की लेकिन मुसलमानों का यह इम्तियाज़ रहा है कि उन्होंने अल्लाह की मुहब्बत के साथ अपने नबी से मुहब्बत नहीं की बल्कि अपने नबी से मुहब्बत अल्लाह के लिए की क्योंकि अल्लाह तबारक व तआला को अपनी मख़लूक़ में सबसे ज़्यादा मुहब्बत रसूलुल्लाह (स0अ0व0) से है।

इसी तरह रसूलुल्लाह (स0अ0व0) को भी उससे मुहब्बत थी जिससे अल्लाह को मुहब्बत हो और यह बात आप (स0अ0व0) को वही के ज़रिये मालूम हो जाती थी कि अल्लाह को किससे मुहब्बत है? उसी से आप (स0अ0व0) मुहब्बत करते थे।

हमारे लिए यह एक बेहतरीन मेयार है कि हम देखें कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने किससे कितनी मुहब्बत फ़रमाई है? रसूलुल्लाह (स0अ0व0) ने सहाबा (रज़ि0) से मुहब्बत की है और इसी निस्बत से तमाम मुसलमानों को भी उनसे मुहब्बत है। इसलिए कि उन्होंने मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर रसूलुल्लाह (स0अ0व0) का ग़ैर मामूली साथ दिया और अपनी ख़्वाहिशात को आख़िरी दर्जे में क़ुर्बान किया और अपने जज़्बात की उन्होंने इन्तिहाई दर्जे क़ुर्बानियां दी। उनमें बाज़ वह भी हैं जो इस्लाम से क़ब्ल मुख़ालिफ़ लश्करों में रहे हैं और उनके जज़्बात बिल्कुल मुआन्दाना व मुख़ालिफ़ाना रहे हैं, लेकिन फिर उन्होंने ख़ुद को रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के सामने पेश कर दिया और आप (स0अ0व0) के झण्डे तले आ गए।

हज़रत हब्शी (रज़ि0) जिनके वार से सैय्यदुश्शुहदा हज़रत हमज़ा (रज़ि0) शहीद हुए और हज़रत हिन्दा (रज़ि0) जिन्होंने अम–ए–नामदार–ए–रसूल (स0अ0व0) का कलेजा चबाया, कोई मामूली वाक़्या न था लेकिन यह सब लोग जब हुज़ूर (स0अ0व0) के झण्डे के नीचे आ गए तो उनका हाल यह हो गया कि ख़ुद हज़रत हिन्दा (रज़ि0) ने एक मौक़े पर यह बात कह दी कि:

"ईमान लाने से पहले मुझे हुज़ूर (स0अ0व0) और आपका जत्था सबसे ज़्यादा मबग़ूज़ था लेकिन अब आपसे बढ़कर कोई महबूब न रहा।"

इसी से मिलती जुलती बात हज़रत अम्र बिन आस (रज़ि0) ने भी कही थी।

रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की यह ख़ासियत थी कि आप (स0अ0व0) के हाथ पर हाथ देते ही आदमी का तज़किया हो जाता था और मुहब्बत व अज़मत की एक नज़र आदमी को बिल्कुल पाक–साफ़ कर देती थी। इसी का असर था कि हज़रत वहशी (रज़ि0) ने फिर अपने माक़ब्ले इस्लाम के वाक़तये की तलाफ़ी इस तरह की कि मुद्दई–ए–नुबूव्वत मुसैलमा कज़्ज़ाब का सर तन से जुदा कर दिया और वह उन्हीं के वार से हलाक हुआ।

हज़रत अबूसुफ़ियान (रज़ि0) ने भी अपनी ग़लतियों की ऐसी तलाफ़ी की कि अपने बेटे हज़रत मुआविया (रज़ि0) को हुज़ूर (स0अ0व0) के सुपुर्द कर दिया और दरख़्वास्त की कि:

"इसको कातिब बना लीजिए, यह आपकी ख़िदमत करेंगे।"

सहाबा किराम (रज़ि0) में से यह एक–दो नज़ीर नहीं है बल्कि ऐसी बेशुमार नज़ीरें मौजूद हैं लेकिन अगर यह कहा जाए कि हुज़ूर (स0अ0व0) की जमाअत की तरबियत सही नहीं हो पाई और वह लोग आप (स0अ0व0) के बाद राहे रास्त से हट गए तो यह बहुत बड़ा इल्ज़ाम है।

"मिन्हाजुस्सुन्नह" में इमाम शाफ़ई (रह0) के हवाले से इमाम इब्ने तैमिया (रह0) ने बड़ी अहम बात लिखी है कि "यहूदियों से पूछा गया कि सबसे अच्छे लोग कौन हैं? तो उन्होंने कहा कि हज़रत मूसा के लोग हैं। ईसाईयों से पूछा गया कि उनके लोगों में सबसे अच्छे कौन हैं? तो उन्होंने कहा कि जो हज़रत ईसा के हवारी हैं। लेकिन शियों की अजीब ही मन्तिक़ है, जब उनसे पूछा गया कि सबसे बुरे लोग कौन हैं तो वह कहते हैं कि रसूलुल्लाह (स0अ0व0) के सहाबा हैं।

यही बात नवाब मोहसिनुलमुल्क (रह0) ने लिखी है जो पहले शिया थे लेकिन बड़े आली दिमाग़ और बालिग़ नज़र थे, उन्होंने हक़ाएक़ पर ग़ौर किया फिर उन्होंने शीईयत से सच्ची तौबा की। नवाब मोहसिनुलमुल्क की इबारत मुलाहिज़ा हो:

"हक़ीक़त यह है कि जो एतक़ाद शियों का बनिस्बत सहाबा किराम (रज़ि0) के है, इससे इल्ज़ाम आप (स0अ0व0) की नुबूव्वत पर आता है और सुनने वाले को मज़हबे इस्लाम पर शुब्हा होता है। इसलिए कि जब कोई इस अम्र पर यक़ीन कर ले कि जो लोग आंहज़रत (स0अ0व0) पर ईमान लाए, उनके दिलों पर कुछ असर ईमान व इस्लाम का न था और वह सिर्फ़ ज़ाहिर में मुसलमान और अयाज़बिल्लाह! बातिन में काफ़िर थे और यह हज़रत (स0अ0व0) के इन्तिक़ाल करते ही उससे फिर गए। वह हज़रत (स0अ0व0) की नुबूव्वत की तस्दीक़ नहीं कर सकता और कह सकता है कि हज़रत (स0अ0व0) अगर सच्चे नबी होते तो कुछ न कुछ उनकी हिदायत में तासीर होती और कोई न कोई दिल से उन पर ईमान लाया होता और मिन जुम्ला हज़ारों–लाखों आदमियों के जो उन पर ईमान लाए, सौ–दो सौ आदमी तो साबित क़दम रहते। अगर सहाबा किराम तुम्हारे अक़ाएदे बातिला के मुताबिक़ ईमान व इस्लाम में कामिल न थे तो वह लोग कौन से हैं जिन पर हज़रत (स0अ0व0) की हिदायत का असर हुआ और वैसे लोग कितने हैं जिनको हज़रत (स0अ0व0) से फ़ायदा हुआ? अगर अस्हाबे नबी सिवाय मअदूदे चन्द के बक़ौल तुम्हारे "सब–अयाज़बिल्लाह!– मुर्तद व मुनाफ़िक़ थे" तो दीने इस्लाम को किसने कुबूल किया? और पैग़म्बर (स0अ0व0) की तालीम व तलक़ीन से किसको फ़ायदा पहुंचा?" (आयात–ए–बैय्यनात: 1/6–7)

ज़रूरत इस बात की है कि हममें से हर शख़्स ग़ौर व फ़िक्र से काम ले और अपनी फ़िक्र का जाएज़ा लेता रहे कि वह कहां जा रहा है? इसलिए कि अगर हम सलफ़ के तरीक़े पर नहीं रहेंगे और सलफ़ से बदगुमान हो जाएंगे और जम्हूर के रास्ते से हटेंगे तो यक़ीनन हम गुमराह होंगे। इसलिए कि फिर शैतान ऐसे जकड़ लेता है जैसे भेड़िया अपनी गिरफ़्त में उस बकरी को ले लेता है जो रेवड़ से हटती है।

चन्द लम्हे
सलफ़-ए-सालिहीन के सोहबत में

मुहम्मद अमीन हसनी नद्वी

सलफ़–ए–सालिहीन की जमाअत एक ऐसी जमाअत है जिसके बारे में ज़बाने नुबूव्वत ने गवाही दी। अल्लाह तआला ने उनको अपने नबी (स0अ0व0) के दीन की हिफ़ाज़त व सयानत के लिए कुबूल फ़रमाया और उम्मत के लिए उनको मुक़्तदरन और पेशवा बनाया। रसूलुल्लाह (स0अ0व0) की ज़बानी उनको कुबूलियत का मज़दह सुना दिया गयाः "और यह गवाही इसीलिए दी गयी है कि उनकी ज़िन्दगी से और उनकी सोहबत से कुछ सीखा जाए।" उनकी ख़शीयत, उनके दिल की सफ़ाई, जज़्बात व एहसासात की पाकीज़गी, इख़्लास व लिल्लाहियत, जज़्बात की नर्मी, ईमान की पुख़्तगी, आमाल–ए–सालिहा में मदावमत की कुछ किरनें उनसे हासिल की जाएं।

हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि0) को आख़िरत का इतना ख़ौफ़ था कि फ़रमातेः "काश! मैं हिसाब–किताब से बच पाता। काश! मैं कोई दरख़्त होता जिसे काट दिया जाता।"

हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि0) एक मर्तबा सूरह तूर की तिलावत कर रहे थे, जब इस आयत पर पहुंचे (बेशक तेरे रब का अज़ाब वाक़ेअ होकर रहेगा) तो इतना रोए कि रोने की शिद्दत से बीमार हो गए। लोग अयादत के लिए आए तो फ़रमाया कि "मैं इस बात को पसंद करता हूं कि मामला बराबर–सराबर का हो, न अज्र मिले न सज़ा।"

हज़रत उस्मान ग़नी (रज़ि0) जब किसी क़ब्र के पास होते तो इतना रोते कि दाढ़ी तर हो जाती और फ़रमाते कि जन्नत और जहन्नम के दरमियान इस हाल में खड़ा हूं कि मुझे कुछ इल्म नहीं कि किस तरफ़ जाने का हुक्म मिले।

हज़रत अली (रज़ि0) फ़रमातेः "ज़्यादा उम्मीदें न लगाओ, ज़्यादा उम्मीदें आख़िरत को भुला देती हैं। जान लो कि यह दुनिया मुंह मोड़ कर जा रही है और आख़िरत आन पड़ी है, दुनिया के पीछे मत पड़ो, आख़िरत वाले बनो, आज अमल का वक़्त है कोई हिसाब नहीं, कल हिसाब होगा अमल नहीं।"

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि0) अपने साथियों के पास कहते थे कि मेरी ख़्वाहिश यह है कि मेरा मामला अस्हाबुल यमीन के बजाए अस्हाबुल मुक़र्रबीन के साथ किया जाए। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि0) ने फ़रमायाः मैं तो चाहता हूं कि मौत के बाद दोबारा न उठाया जाए यानि मेरा हिसाब व किताब न किया जाए। मुझे इससे भी ख़ौफ़ है कि मुझे दोबारा उठना होगा और मेरे साथ क्या मामला होगा?

एक साएल हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि0) के पास आया और कुछ उनसे मांगा, हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि0) ने अपने साहबज़ादे से कहाः उसे कुछ दे दो। जब वह चला गया तो उनके साहबज़ादे ने कहाः "अल्लाह तआला आपके देने को कुबूल फ़रमाए।" उन्होंने कहाः अगर मुझे यह मालूम हो कि अल्लाह तआला ने मेरे एक सज्दे को या मेरे सदक़े को कुबूल फ़रमा लिया तो मुझे मौत से ज़्यादा पसंदीदा चीज़ कोई न लगे, क्योंकि अल्लाह तआला का इरशाद हैः "बिला शुब्हा अल्लाह तआला परहेज़गारों का अलम कुबूल करता है।" (सूरह माइदाः 27)

हज़रत अब्दुर्रहमान बिन हारिस (रज़ि0) फ़रमाते हैं कि एक मौक़े पर मैं हज़रत अब्दुल्लाह बिन हन्ज़ला (रज़ि0) के पास उनकी अयादत के लिए गया, किसी ने उनके सामने यह आयत पढ़ीः "उनके लिए आग का बिस्तर होगा और उनके ऊपर आग की चादर, ज़ुल्म करने वालों को हम इसी तरह बदला देते हैं" और वह इस क़दर रोए कि हमको लगा कि उनकी रूह परवाज़ कर गई।

हज़रत इदरीस बिन होशब (रह0) फ़रमाते हैं कि "मैंने हज़रत हसन बसरी (रह0) और हज़रत उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ (रह0) से ज़्यादा डरने वाला नहीं देखा, ऐसा महसूस होता कि जहन्नम सिर्फ़ उन्हीं के लिए बनाई गयी है।

हज़रत इमाम अहमद बिन हम्बल (रह0) के इन्तिक़ाल के वक़्त जब आपके साहबज़ादे ने तबियत के बारे में पूछा तो फ़रमाया कि "अभी जवाब का वक़्त नहीं बस दुआ करो कि अल्लाह तआला मेरा ख़ात्मा ईमान पर कर दे क्योंकि इब्लीस अपने सर पर ख़ाक डालते हुए कह रहा है कि तेरा ईमान की सलामती के साथ दुनिया से जाना मेरे लिए बर्बादी है और मैं उससे कह रहा हूं कि अभी नहीं, जब तक एक भी सांस बाक़ी है मैं ख़तरे में हूं, मुझे इत्मिनान नहीं हो सकता।"

मौलाना अली मियां नदवी (रह0)

बहैसियत सदर आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड

मुहम्मद अरमुग़ान बदायूंनी नदवी

आज़ादी–ए–हिन्द के बाद जब मुल्क में यूनिफ़ार्म सिविल कोड का ख़तरा अंदेशों से बढ़कर वाक़्यात की शक्ल में सामने आने लगा और हुकूमती रूझानों के साथ तजद्दुद पसंद मुसलमानों की जानिब से भी यह मुतालबात होने लगे कि हिन्दुस्तान में तमाम फ़िरक़ों का एक मुश्तरक आइली क़ानून नागुज़ीर है वरना मुल्क में क़ौमी वहदत और यकरंगी पैदा नहीं हो सकती, तो हिन्दुस्तान के रोशन ज़मीर उलमा–ए–दीन ने बरवक़्त इस फ़ित्ने का ताक़्कुब किया और तमाम मकातिब–ए–फ़िक्र पहली बार 1972ई0 को मुम्बई में जमा हुए, जहां ऑल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के नाम से एक ऐसा प्लेटफ़ार्म बनाया गया जो मुसलमानों के लिए शहे रग की हैसियत रखता है और शरई नुक़्ता–ए–निगाह से उनकी मौत व हयात का मसला है। इस बोर्ड के मुत्तफ़िक़ा तौर पर पहले सदर हज़रत मौलाना क़ारी मुहम्मद तैय्यब साहब (रह0) मुन्तख़ब हुए।

हज़रत क़ारी साहब (रह0) की वफ़ात के बाद 1983ई0 में मुत्तफ़िक़ा तौर पर मुसलमानों की इज्तिमाइयत के सबसे बड़े प्लेटफ़ार्म के सदर मुफ़क्किर–ए–इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अबुल हसन अली नदवी(रह0) मुन्तख़ब हुए और यह अजीब इत्तिफ़ाक़ था कि इस मौक़े पर हज़रत मौलाना अपनी नक़रस (ळवनज) की तकलीफ़ के सबब इस जलसे में मौजूद भी न थे।

बोर्ड की सदारत का फ़ैसला हज़रत मौलाना (रह0) के लिए उनकी इफ़्ताद तबियत, सेहते जिस्मानी, उम्र और दूसरी ज़िम्मेदारियों व मशाग़िल के लिहाज़ से गरचे मेल न खाता था, मगर मुल्क के सियासी हालात की नज़ाकत और ख़ुद बोर्ड को इख़्तिलाफ़ व इन्तिशार से बचाने के लिए इस ज़िम्मेदारी को क़ुबूल करना हज़रत मौलाना (रह0) के लिए एक नागुज़ीर अम्र था, वरना बक़ौल मुफ़क्किर–ए–इस्लाम (रह0):

"अगर यह किसी भी सियासी, मिल्ली तन्ज़ीम और बाइसे इफ़्तिख़ार व ऐज़ाज़ मन्सब के क़ुबूल करने का मामला होता तो मैं बग़ैर किसी अदना तरद्दुद के इनकार कर देता।" (कारवान–ए–ज़िन्दगी: 3/112)

हज़रत मौलाना (रह0) के अहदे सदारत में बोर्ड और मिल्लते इस्लामिया हिन्दिया को बड़े संगीन मराहिल से गुज़रना पड़ा, मगर यह ख़ुशक़िस्मती की बात थी कि इस वक़्त मिल्लते इस्लामिया हिन्दिया के सर पर हज़रत मौलाना (रह0) की शक्ल में एक साहिबे ज़मीर, बेबाक और बेलौस क़ायद का साया था।

हज़रत मौलाना (रह0) के अहदे सदारत में जो हालात पेश आए उनकी संगीनी का अंदाज़ा उनके इन अल्फ़ाज़ से बख़ूबी लगाया जा सकता है:

"मुझे मालूम नहीं था कि मेरे सदारत क़ुबूल करने के कुछ अर्से बाद ही न सिर्फ़ बोर्ड की तारीख़ में बल्कि मिल्लते इस्लामिया हिन्दिया की तारीख़ में ऐसे संगीन मसले पेश आएंगे जो शायद उससे पहले अर्से से पेश नहीं आए और जिनमें क़यादत के ग़ैर मामूली हज़्म व अज़्म, मिल्लत के नज़्म व ज़ब्त, उलमाए दीन व माहिरीने क़ानून के इल्म व मुताला, ज़हानत व तदब्बुर और अवाम के इन्क़ियाद व इताअत, सब्र व तहम्मुल, क़ायदीन पर एतमाद और तफ़वीज़ व तस्लीम की ग़ैर मामूली सलाहियत के सुबूत देने और मिल्ली शऊर का मुज़ाहिरा करने की ज़रूरत पेश आएगी।" (कारवान–ए–ज़िन्दगी: 2/113)

हज़रत मौलाना (रह0) के अहदे सदारत में बोर्ड का पहला अज़ीमुश्शान इजलासे आम 1985ई0 को कलकत्ता में मुनअक़िद हुआ जिसमें हिन्दुस्तान के मुसलमानों की तमाम दीनी व सियासी जमाअतें, मुस्लिम तन्ज़ीमें, मुख़्तलिफ़ मकातिबे ख़्याल के ज़िम्मेदार मुस्लिम दानिशवर, सरबरावरदा उलमा और क़ानूनदानों की बड़ी तादाद शरीक हुई। इस इजलास में हज़रत मौलाना का सदारती ख़िताब हुआ। जिसमें आपने बतौर–ए–ख़ास बेबाक और बेलाग़ तरीक़े पर मुसलमानों का एहतिसाब किया, जिसका अल्हम्दुलिल्लाह मजमे पर बहुत अच्छा असर पड़ा।

यह इजलासे आम 8 अप्रैल 1985ई0 की शाम को ख़त्म हुआ था और उसी माह की 23/तारीख़ को हिन्दुस्तानी मुसलमानों और ख़ास तौर पर बोर्ड की तारीख़ में एक फ़ैसलाकुन मरहला पेश आ गया, बक़ौल हज़रत मौलाना कि "सर मुंडवाते ही ओले पड़ गए।"

दरअस्ल 23/अप्रैल को नफ़्क़ा मुतलक़ा के मसले में दो फ़ैसला किया था जिसकी संगीनी के मुताल्लिक़ हज़रत लिखते हैं:

"इसमें दीन की खुली मदाख़लत, कुरआन मजीद के

अल्फ़ाज़ की मनमानी तश्रीह व तफ़सीर, शरीअते इस्लामी की तौहीन और उस पर खुला हमला था। इसने मिल्लत को झिंझोड़ कर रख दिया और उसको अपने दीन व शरीअत से वाबस्तगी, इस्लाम से वफ़ादारी और ग़ैरत व खुद्दारी के एक फ़ैसलाकुन मरहले पर लाकर खड़ा कर दिया।" (कारवान–ए–ज़िन्दगीः 3/116)

बिला शुब्हा हज़रत मौलाना (रह0) के लिए यह वह पहला मौक़ा था जब उन्हें वुसअते इफ़लाक में तकबीरे मुसलसल का अमली सुबूत पेश करना था और जिनके अज़्म व हज़्म और दूरंदेशी पर पूरी मिल्लत–ए–इस्लामिया हिन्दिया की निगाहें थीं। इस फ़ैसलाकुन मौक़े पर हज़रत मौलाना (रह0) की सरपरस्ती में मुल्कगीर सतह पर पुरअम्न तूफ़ानी इहतिजाजात हुए और हर सतह पर अवाम व ख़्वास के ज़रिये ऐसी कामयाब कोशिशें की गईं जिनका हुकूमत पर असर पड़े और वह पार्ल्यामेंट में नया बिल पास करके उस हुक्म को मन्सूख़ करने पर मजबूर हो।

मुल्की सतह पर इन एहतिजाजात में मुसलमानों के जोश व ख़रोश का अंदाज़ा हज़रत मौलाना (रह0) के इन अल्फ़ाज़ों से होता हैः

"मुझे याद है कि एक मक़ाम से दूसरे मक़ाम तक ट्रेन से जाते हुए आधी रात को स्टेशन पर मुसलमानों का मजमा नज़र आता जो अपने दीनी रहनुमाओं की ज़ियारत करना चाहता था और अक्सर यह कहता कि शरीअत की हिफ़ाज़ात के लिए जान–माल हाज़िर है।" (कारवान–ए–ज़िन्दगीः 3/125)

मुसलमानों के इस आम रूझान की शहादत हुकूमत के वज़ीर क़ानून मिनिस्टर अशोक सेन ने भी हज़रत मौलाना (रह0) के सामने दीः

"मौलाना साहब! बहुत से ऐसे मुस्लिम जजों और माहिरीने क़ानून के खुतूत आए हैं जिन्होंने सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले की ताईद की है लेकिन मुसलमानों की मेजारिटी आप ही के साथ है।"

इन एहतिजाजात के साथ ही हज़रत मौलाना (रह0) की बारीक बीं निगाह ने यह फ़ैसला भी किया कि एक बड़ी तादाद में हुकूमते हिन्द को ऐसे तार मौसूल कराए जाएं जो एक जम्हूरी हुकूमत को इस मसले पर संजीदगी से ग़ौर करने पर आमादा कर सकें। इसीलिए आपने मुल्की सतह पर दस्तख़ती मुहिम भी बड़े ज़ोरों पर चलाई जिसमें मुसलमानों ने भरपूर हिस्सा लिया।

इन्फ़िरादी तौर पर हज़रत मौलाना (रह0) ने एक जुर्रतमंदाना कोशिश यह भी की कि हुकूमत के आला ज़िम्मेदारों और वज़ीरे आज़म से बराहे रास्त मिलकर मसले की नज़ाकत को समझाया और उन्हें यह बावर कराया कि मुसलमान ख़्वाब में भी शरीअत के किसी एक हिस्से से दस्तबरदार होने की सोच नहीं सकता।

इस सिलसिले में 3 फ़रवरी 1986ई0 को हज़रत मौलाना (रह0) की वज़ीर–ए–आज़म मिस्टर राजीव गांधी से पहली मुलाक़ात हुई, जिसमें हज़रत मौलाना (रह0) ने बाइसरार यह बात कही कि इस फ़ैसले को पार्ल्यामेंट में बिल पेश करके कलअद्म क़रार दिया जाए मगर वज़ीर–ए–आज़म हिन्द ने माज़रत के अंदाज़ में कहा किः

"बाज़ क़ानूनी मजबूरियों के बाइस आर्डिनेंस नहीं आ सका, अब बिल पार्ल्यामेंट में आ जाएगा।"

17 फ़रवरी को इसी मसले के सबब हज़रत मौलाना (रह0) की वज़ीरे आज़म से दूसरी मुलाक़ात हुई। इस मुलाक़ात में वज़ीरे आज़म ने अपने वज़ीरे क़ानून से बिल का वह मसौदा पढ़कर गोश गुज़ार कराया जो पार्ल्यामेंट में पास होना था। इस बिल को हज़रत मौलाना (रह0) ने हरफ़न–हरफ़न सुना और जिस चीज़ की ज़रूरत महसूस हुई उसमें हज़फ़ व इज़ाफ़ा भी कराया। फिर अगले दिन हज़रत मौलाना (रह0) ने इस्लाह शुदा बिल का मसौदा दोबारा देखने की बात कही जिसे वज़ीरे आज़म हिन्द ने कुबूल किया और इस तरह इसी मसले के सबब वज़ीरे आज़म से बेतकल्लुफ़ाना यह तीसरी कामयाब मुलाक़ात साबित हुई।

इसी दौरान एक दिलचस्प आज़माइश सर पर यह आन पड़ी कि किसी शरपसंद ने वज़ीरे आज़म को इस मसले में मुख़्तलिफ़ मुस्लिम मोमालिक का तर्ज़े अमल मालूम करने का मशवरा दिया कि उनके यहां मुस्लिम पर्सनल लॉ में तरमीम करने की गुंजाइश है या नहीं? अगर है तो फिर एक जम्हूरी मुल्क में बदर्जे ऊला इसकी गुंजाइश मुमकिन है। हज़रत मौलाना (रह0) को जब इस हरकत का इल्म हुआ तो बरवक़्त नोटिस लिया और अलल फ़ौर वज़ीरे आज़म से मुलाक़ात की और उनके सामने अफ़हाम व तफ़हीम का ऐसा हकीमाना उस्लूब अख़्तियार किया कि अल्हम्दुलिल्लाह एक बड़ा फ़ित्ना उठने से पहले ही दब गया। शाही दरबार में हज़रत मौलाना (रह0) के वह तारीख़ साज़ हकीमाना अल्फ़ाज़ मुलाहिज़ा होंः

"राजीव जी! अगर आपसे कोई कहे कि दूसरे मुस्लिम मोमालिक भी तो है वहां से मालूम कर लेना चाहिए कि

उन्होंने अपनी आइली क़ानून (पर्सनल लॉ) में कोई तब्दीली की है या नहीं? फिर आप उनकी तक़लीद कर सकते हैं तो आपको यह पोज़ीशन हरगिज़ क़ुबूल नहीं करना चाहिए। हम एक मर्तबा अगर इनकार करें तो आपको चार मर्तबा इनकार करना चाहिए, इसलिए कि जहां तक हिन्दुस्तान की रहनुमाई करने का ताल्लुक़ है, आपकी तीसरी पुश्त है। हिन्दुस्तान इल्मी व मज़हबी हैसियत से (जहां तक मुसलमानों का ताल्लुक़ है) किसी मुस्लिम या अरब मुल्क से कम नहीं है, वह अपना ख़ुद मक़ाम रखता है। मुझे कहना नहीं चाहिए लेकिन कहता हूं कि आलमे इस्लाम की सबसे बड़ी माहिरीने क़ानून शरीअते इस्लामी की मजलिस (एकेडमी) राब्ता–ए–आलम–ए–इस्लामी मक्का मुअज़्ज़मा की "अलमजमउल फ़िक़्ही" है जिसका हिन्दुस्तान में मैं तन्हा मेम्बर हूं, बाज़ मर्तबा ऐसा हुआ कि सारे मेम्बरान एक तरफ़ थे और मैं एक तरफ़ था और फ़ैसला मेरी राय पर हुआ। यहां इसी मजलिस में ऐसे उलमा मौजूद हैं कि अगर उनका नाम जामेअ अज़हर में लिया जाए तो लोग एहतराम से गर्दन झुका लें।" (कारवान–ए–ज़िन्दगीः 3/134)

हज़रत मौलाना के बराहेरास्त ऐसे हकीमाना उस्लूब का वज़ीरे आज़म पर यह असर पड़ा कि उन्होंने इस बिल को मंज़ूर कराना अपनी अव्वलीन ज़िम्मेदारी समझा और इसके लिए हर मुश्किल से नबरदआज़मा होने को तैयार हो गए। इस सिलसिले में पेश आने वाली तमाम क़ानून दुश्वारियों का उन्होंने जाएज़ा लिया और फिर अपनी पार्टी को एक व्हिप जारी करके यह हिदायत की कि हर फ़र्द का पार्ल्यामेंट में बहस के दौरान हाज़िर होना और बिल की हिमायत में वोट डालना लाज़मी है। इसका असर यह हुआ कि उन्हीं की पार्टी में अगर किसी को इस बिल से एतराज़ था तो वह भी वोटिंग के दौरान इस बिल का हामी नज़र आ रहा था। यह बिल पार्ल्यामेंट में 5 मई को पेश हुआ था और 6 मई की दरमियानी शब में मंज़ूर हुआ था। हज़रत मौलाना (रह0) लिखते हैं:

"5 और 6 मई की दरमियानी शब मुसलमानों के लिए अजीब रात थी। कितने मुसलमानों ने रात जागते और दुआ करते गुज़ारी, घरों में दुआएं हो रहीं थीं और ख़त्म पढ़े जा रहे थे।" (कारवान–ए–ज़िन्दगीः 3/141)

आख़िरकार कई घंटों की मुसलसल बहस के बाद और मुस्लिम क़ायदीन और पूरे मुस्लिम समाज की अनथक जद्दोजहद के नतीजे में रात को पौने तीन बजे यह तारीख़ी बिल पार्ल्यामेंट में मंज़ूर हुआ और इस तरह एक सेक्यूलर मुल्क और अक़्लियती फ़िरक़े को अपने तहफ़्फ़ुज़ का यक़ीन हुआ और मुस्लिम क़ायदीन पर हिन्दुस्तानी मुसलमानों के ऐतज़ाज़ व इफ़्तिख़ार में इज़ाफ़ा हुआ। बिलाशुब्हा यह तारीख़ साज़ और संगीन मसला हज़रत मौलाना (रह0) के अहदे सदारत का एक जिली उनवान है।

हज़रत मौलाना (रह0) की सरपरस्ती में अगरचे बोर्ड और मिल्लते इस्लामिया हिन्दिया ने एक बड़ी कामयाबी हासिल की थी मगर हज़रत मौलाना (रह0) इसको जुज़्वी और महदूद कामयाबी समझते थे, इसलिए कि उनकी निगाहें यह देख रही थीं कि हिन्दुस्तानी मुसलमानों के सरों पर कॉमन सिविल कोड का ख़तरा मंडला रहा है जिसके बाद यह बिल भी कलअदम हो जाएगा। यही वजह है कि हज़रत मौलाना (रह0) अपने ख़ुत्बात में और हर सतह पर मुसलमानों को कॉमन सिविल कोड की संगीनी और इसके ख़तरों से आगाह करते रहे और मुल्क के क़ायदीन को भी इसके भयानक नताएज से मुत्नब्बेह करते रहे।

1990ई में जब बहुत से मेम्बर ऑफ़ पार्ल्यामेंट्स के बयानों से यह ख़तरा महसूस हुआ कि हिन्दुस्तान में यूनिफ़ार्म सिविल कोड के निफ़ाज़ की कोशिश ज़ोर पकड़ सकती है और मुसलमानों का पर्सनल लॉ एक बार फिर ख़तरे में पड़ सकता है तो हज़रत मौलाना (रह0) ने इस मौक़े पर वज़ीर–ए–आज़म हिन्द वी पी सिंह को एक मकतूब रवाना किया जिसमें उन्होंने मुख़्लिसाना मशवरे दिये और बतौर ख़ास मुसलमानों के पर्सनल लॉ के तहफ़्फ़ुज़ को यक़ीनी बनाने की बात कही। इसी के मअन बाद जब अराकीने बोर्ड को इस बात का एहसास हुआ कि एक वफ़्द वज़ीरे आज़म से मिलकर आम मुसलमानों के जज़्बात व ख़्यालात और शुकूक व शुब्हात बयान कर दे तो इस मौक़े पर हज़रत मौलाना (रह0) की सरबराही में एक वफ़्द ने वज़ीरे आज़म हिन्द वी पी सिंह से मुलाक़ात की। हज़रत मौलाना (रह0) की यह मुलाक़ात बड़ी मुफ़ीद साबित हुई जिसका अंदाज़ा इस बात से किया जा सकता है कि जनाब वी पी सिंह ने आख़िर में यक़ीन दहानी के बतौर यह कहा कि:

"मुस्लिम पर्सनल लॉ में (हुकूमत का) किसी मदाख़लत का इरादा नहीं है और यूनिफ़ार्म सिविल कोड को मुख़्तलिफ़ फ़िर्कों और अक़्लियतों पर थोपा नहीं जाएगा।" (कारवान–ए–ज़िन्दगीः 4/211)

इसी तरह 1995ई0 में जब सुप्रीम कोर्ट के एक बयान

से कॉमन सिविल कोड का ख़तरा दोबारा लाहक़ हुआ तब भी आपने ग़ैरमामूली कोशिश की। मीडिया में जुर्रतमंदाना बयान दिये और हुकूमत के ज़िम्मेदारों से मुलाक़ात करके आख़िरकार हिन्दुस्तानी मुसलमानों को तहफ़्फ़ुज़ बख़्शा।

जिस ज़माना में नफ़क़ा–ए–मुतल्लक़ा का मसला हिन्दुस्तान के सियासी आसमान पर छाया हुआ था, इसी दौरान बाबरी मस्जिद का मसला भी मौज़ू–ए–बहस बन चुका था। इस सिलसिले में भी हुकूमती ज़िम्मेदारों से मुलाक़ात के वक़्त हज़रत मौलाना (रह0) के खुलकर बातचीत की और उन्हें इस मौज़ू को दबा देने का मशविरा दिया मगर शर पसंद अनासिर ने ऐसी तजावीज़ को ख़ातिरख़्वाह अहमियत न दी।

बाबरी मस्जिद का क़ज़िया जब ज़्यादा उलझा तो मुत्तफ़िक़ा तौर पर हज़रत मौलाना (रह0) का नाम सालिसी का किरदार अदा करने के लिए पेश किया गया। हज़रत मौलाना (रह0) का इस पूरे क़ज़िये में एक ही नज़रिया था जिसको ज़िम्मेदारानों ने तस्लीम भी किया था और वह नज़रिया यह था कि:

1– मस्जिद ख़ालिस हिन्दु मज़हबी पेशवाओं की तौलियत में न दी जाए।

2– हुकूमत इसके तहफ़्फ़ुज़ की ज़िम्मेदारी ले।

बाबरी मस्जिद ही के क़ज़िये में माह अक्टूबर 1990ई0 में एक वफ़्द के साथ हज़रत मौलाना (रह0) की वज़ीरे आज़म हिन्द से मुलाक़ात हुई जिसमें हर क़ीमत पर मुल्क के अन्दर अमन व अमान बाक़ी रखने की बात को यक़ीनी बनाया गया था मगर बाद में यह पता चला कि उन्होंने मस्जिद को सरकारी मिल्कियत में लेने और इस मसले को सुप्रीम कोर्ट के हवाले करने की बात कही है तो मौलाना (रह0) ने अख़बारों में अपना बयान जारी किया और बड़ी जुर्रत से वज़ीरे आज़म के मौक़िफ़ से अद्मे हिमायत का ऐलान किया। इसका असर यह हुआ कि

"बाद में मालूम करके सबको इत्मिनान व मसर्रत हुई कि सदारती आर्डिनेंस वापस ले लिया गया और इससे जो पेचीदगी और ख़तरात पैदा हुए थे वह फ़ौरी और ज़ाहिरी तौर पर रफ़अ हो गए। (कारवान–ए–ज़िन्दगी: 4/354)

लेकिन बाबरी मस्जिद के क़जिये में सौ फ़ीसद कामयाबी के अद्मे हुसूल की एक बड़ी और बुनियादी वजह बताते हुए हज़रत मौलाना (रह0) लिखते हैं:

"यह मसला ऐसा आसान, सादा और सहलुल इल्म नहीं रहा, इसके साथ मुख़्तलिफ़ जमाअतों और तन्ज़ीमों की दिलचस्पियां, क़ायदाना मफ़ादात और मुस्तक़बिल की इज़्ज़त व शोहरत के जज़्बात वाबस्ता हैं।" (कारवान–ए–ज़िन्दगी: 4/378)

मगर इसके बावजूद समय–समय पर इस मसले में हज़रत मौलाना (रह0) की शख़्सियत सालिसी का किरदार अदा करती रही। 1992ई0 में जब यह मसला गरम था तो अज़ख़ुद वज़ीर–ए–आज़म नरसिम्हाराव जी ने एक ख़त लिखकर मुलाक़ात की ख़्वाहिश ज़ाहिर की, ताकि इस मसले का कोई हल मुमकिन हो सके। इसके बाद अरकाने बोर्ड का एक वफ़्द तश्कील पाया और हज़रत मौलाना (रह0) ने इसकी बेहतरीन नुमाइन्दगी की।

हज़रत मौलाना (रह0) हकीमाना उस्लूब से बातचीत का यूं आग़ाज़ किया कि

"हिन्दुस्तान की आज़ादी के बाद पहली मर्तबा जुनूबी हिन्द की एक शख़्सियत का वज़ारते उज़मा के लिए इन्तिख़ाब किया गया है। जुनूब अपनी रवादारी और तास्सुबात से दूरी में अभी तक नेक नाम और मुमताज़ रहा है, उम्मीद की जाती है कि आप उस वसीउल क़ल्बी और वसीउन्नज़री से इस मसले का हल तलाश करेंगे।" (कारवान–ए–ज़िन्दगी: 5/106)

हज़रत मौलाना (रह0) ने अपने अहदे सदारत में बोर्ड की तरक़्क़ी व इस्तिहकाम के लिए बहुत से मुफ़ीद काम अंजाम दिये जैसे बाबरी मस्जिद के मसले में ग़ौर व ख़ौज़ और जद्दोजहद के लिए "बाबरी मस्जिद बाज़याबी कमेटी" तश्कील दी और उसको अपने मैदान में बोर्ड के नज़रियात पर क़ायम रहते हुए आज़ादाना काम करने का मुकल्लफ़ बनाया। इसके अलावा बोर्ड के तहत "इस्लाहे मुआशरा" की कमेटियां बनवाईं और मरकज़ी क़ानूनी जाएज़ा कमेटी के तहत सूबाई कमेटियां बना दीं। इन कमेटियों की ज़िम्मेदारी यह थी कि वह ऐसे मुख़्तलिफ़ क़ानूनों और फ़ैसलों पर नज़र रखेंगी जिनसे पर्सनल लॉ में मदाख़लत हो रही हो। इसके अलावा मुसलमानों में बोर्ड के अफ़कार व नज़रियात की तश्हीर के लिए लिट्रेचर की इशाअत की गई और ख़ासकर "मजमूआ क़वानीने इस्लामी" की तरतीब व तदवीन का काम भी हज़रत मौलाना (रह0) ही के अहदे सदारत में अंजाम पाया, जिसके अन्दर तमाम इस्लामी दफ़आत को सहल उस्लूब में मुदव्वन किया गया है।

इख़्लास क्या है?

"अल्लाह तबारक व तआला की इबादत व इताअत में मश्ग़ूल रहना इस तौर पर कि उसकी रज़ा ही मतलूब हो, कोई और ग़रज़, कोई और मक़सद न हो। आदमी जो काम भी करे वह इसलिए करे कि अल्लाह तबारक व तआला राज़ी हो जाए, इसी का नाम "इख़्लास" है और यह ज़िन्दगी के हर हिस्से से ताल्लुक़ रखता है।

अल्लाह तआला का यह हुक्म है कि हमने तुमको इबादत के लिए पैदा किया है और यह हुक्म है कि अल्लाह और उसके रसूल की इताअत करो। मालूम हुआ कि हमारी ज़िन्दगी में दो चीज़ें हैं; एक इबादत और दूसरी इताअत। इबादत में भी अल्लाह की रज़ा मक़सूद हो और इताअत में भी अल्लाह की रज़ा मक़सूद हो;

"जो अल्लाह और उसके रसूल की इताअत करेगा वही सबसे ज़्यादा कामयाब है।" (अलकुरआन)

रसूलुल्लाह (स०अ०व०) की इताअत का ताल्लुक़ ज़िन्दगी के हर हिस्से से है। जब आदमी सुबह को जागता है तो अल्लाह के रसूल (स०अ०व०) को याद करता है, इस एतबार से कि आप क्या करते थे? यह इताअत है कि आपकी ज़बाने मुबारक पर कौन से अल्फ़ाज़ आते थे और उसके बाद आप के मामूलात क्या थे? और जो एहसान करने वाले हज़रात हैं मसलन: उस्ताद है कि आपको सही राह दिखाने वाला है, सही रहनुमाई करने वाला है, उसका एहसान आप किस तरह चुकाएं, इसके साथ क्या मामला करें? यह सारी चीज़ें इताअत में शामिल हैं। इस तरह अगर आप देखेंगे तो ज़िन्दगी का हर गोशा और ज़िन्दगी का हर लम्हा इसमें शामिल है और दोनों में ही मकसूद यह है कि अल्लाह की रज़ा और ख़ुशनूदी हासिल हो जाए, जो काम भी किया जाए अल्लाह को राज़ी करने के लिए किया जाए और यही अस्ल चीज़ है।"

दाई-ए-इस्लाम हज़रत मौलाना सैय्यद अब्दुल्लाह हसनी नदवी (रह०)

(इख़्लास और उसके बरकात व समरातः 8-9)

R.N.I. No.
UPHIN/2009/30527

Monthly
ARAFAT KIRAN
Raebareli

Issue: 09 | September 2023 | Volume: 15

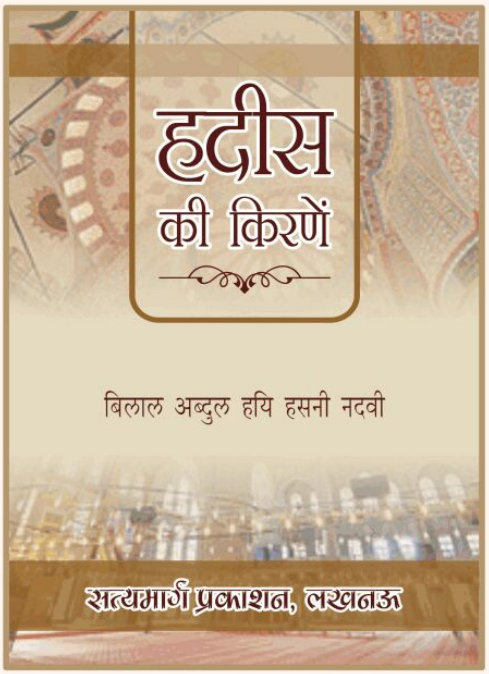

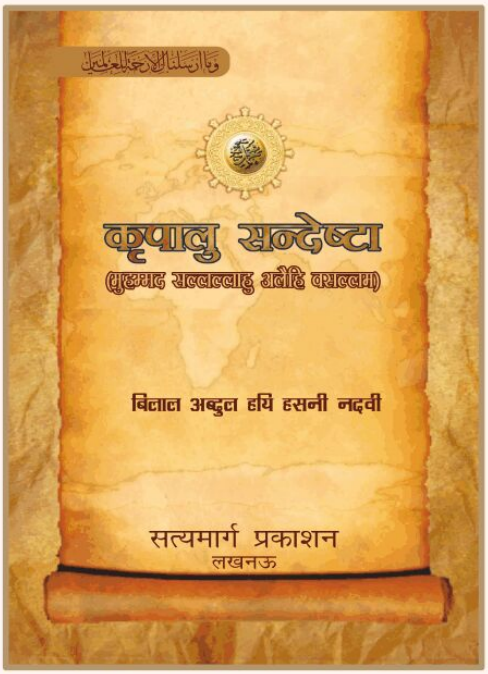

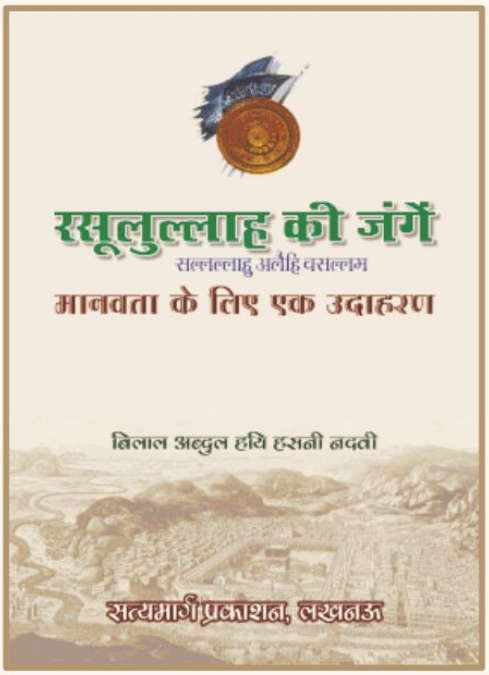

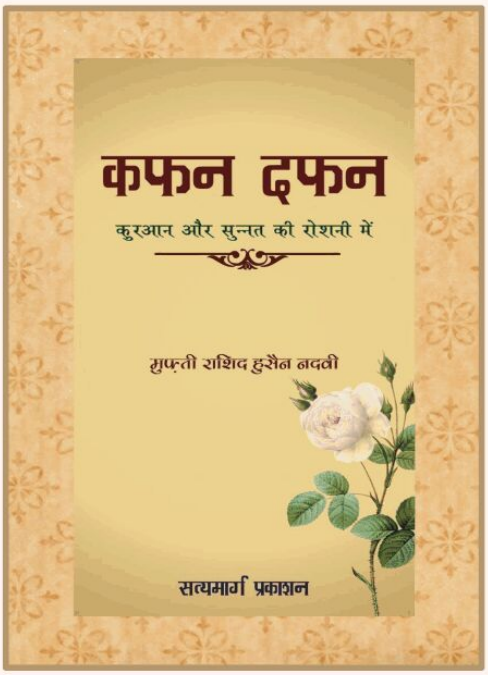

Editor: Bilal Abdul Hai Hasani Nadwi
MARKAZUL IMAM ABIL HASAN AL-NADWI
Dare Arafat, Takiya Kalan, Raebareli, U.P.
Mobile:9565271812
E-Mail: markazulimam@gmail.com
www.abulhasanalinadwi.org

Printed & Published by: Mohammad Hasan Nadwi
On Behalf of: Markazul Imam Abil Hasan Al-Nadwi
Printed at S.A. Offset Printers, Masjid ke peeche,Phatak Abdullah Khan, Sabzi Mandi, Station Road, Raebareli, U.P.